महाकविभारविप्रणीतं

किरातार्जुनीयम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

(प्रथम सर्गः

डॉ० अम[illegible] सिंह

प्राचार्य

बैसवारा डिग्री कालेज, लालगंज

रायबरेली

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी दिल्ली

(१) पो० बा नं १०८ कचौड़ीगली, वाराणसी

(२) १-यू० बी० बंग्लोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली

प्रथम संस्करण १९७३

द्वितीय संस्करण १९८२

मूल्य-४ रु० ५० पै०

मुद्रक :

प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस

डी० १०/११ साक्षी विनायक,

विश्वनाथ गली, वाराणसी

महाकविर्भारविः

आतपत्रभारविरूपेण विश्रुतो महाकविर्भारविः संस्कृतसाहित्यजगति मूर्द्धन्यस्थानं भजते। विलक्षणवैदुष्यपरिपूर्णकाव्यप्रतिभासम्पन्नः सोऽयं किरातार्जुनीयसमाख्यया एकयैव ग्रन्थसम्पत्त्या स्वशुभ्रं प्रसरणशीलं काव्ययशो वितनुते। ऐहोलशिलालेखे कविकुलगुरुणा कालिदासेन समं समुल्लिखितः स विशेषगौरवं लभते। महाकाव्यलक्षणसमन्वितं किरातार्जुनीयम् इदं बृहत्त्रयीकाव्यपरम्परायां प्रमुखं स्थानमधिगच्छति। ओजपूर्णवीररसमयेषु महाकाव्येषु अन्यतममिदम्। महाकवेः पण्डित्यपूर्णप्रज्ञया समुद्भूतमेकं सुमनोहरम् अर्थगौरवयुतं काव्यम्। भाषाया अद्भुतश्चमत्कारः छन्दसां वैचित्र्यम् अलंकाराणां मनोरमा कमनीया छटा दरीदृश्यतेऽत्र। निर्भरा रसपेशलता सहृदयरसिकजनसंवेद्याऽऽस्वाद्या। स्वल्पैरेव शब्दैर्विपुलानाम् अर्थानाम् अभिव्यक्तिर्जाता। व्याकरणपिंगलालंकारकामनीत्यादिविविधशास्त्राणां महाकविरस्ति प्रकाण्डः पण्डितः।

अपरिमितश्च शब्दसागरस्तस्य! अतः सरससुग्राह्यशब्दैः स स्वशास्त्रीयज्ञानं प्रकटीकरोति। पण्डित्यप्रकाशनं प्रति दृश्यते प्रगाढो मोहो महाकवेः। एवम् अलंकृता वैचित्र्ययुता काव्यशैली समुद्भाविता तेन। पूर्वकालात् समागच्छन्तीं काव्यधारां सरलां रचनापद्धतिं नूतनायां दिशि परावर्तयति। अस्या अलंकृतकाव्यधारायां स एव जनकः प्रवर्त्तकः। एवं रूपेण कालिदासाश्वघोषादिकविषु समुपलभ्यमाना सहजस्वाभाविकता तिरोभूता तथा तत्स्थाने कृत्रिमकलावादिता प्रयत्नसाध्या समागता। एवं भावपक्षो गौणोऽभूत् तथा कलापक्षः प्राधान्यं प्राप्तः। अस्या एव रचनापरम्परायाः संवर्द्धनं भट्टिमाघश्रीहर्षादिपरवर्तीकविषु उपलभ्यते। अस्माद् अलंकृतशैलीकारणात् तथा स्वशास्त्रीज्ञानप्रकाशनं प्रति प्रबलमोहात् किरातार्जुनीयमिदं महाकाव्यं नारिकेलसमम् अतीव दुर्बोधं दुष्प्रवेश्यम् अभवत्। सामान्य पाठकानामत्र प्रवेशो न भवति तथापि निर्भररसपेशलतया विदग्धपाठकानां सहृदयानाम् आवर्जकमप्यस्ति।

भाषाविषये स पूर्णाधिकारं विधत्ते। एवं स्वहृद्गतभावम् अनुभूतिं कल्पनावैचित्र्यं सजीवसाकाररूपेण प्रकाशयितुं सफलोऽभूत्। शब्दयोजना हृदयग्राही वर्ण्यविषयानुकूला पात्रानुरूपा चास्ति। विषयवर्णनं सर्वाङ्गपूर्णं विशदम्। विविधानां छन्दसां सुषमा मनोहरति! दीर्घसमासानाम भावः पदानां सुन्दरः सन्निवेशः प्रयोगः साभिप्रायः। एषां परिवर्तनं नह्यस्ति समीचीनम्। अर्थगौरवयुतानां तथापि मधुरकोमलकान्तपदानां प्रयोगो विहितः। यथा वीररसनिरूपणे ओजगुणस्य ओजस्विता पाठकानां चित्तमावर्जयति तथैव शृङ्गाररसे माधुर्यगुणस्य मधुरता मनोऽभिरमयति। प्रसादगुणविशिष्टत्वात् काव्ये विद्यते भावप्रवाहः। परन्तु कालिदासभिन्ना वैदर्भीरीतिरत्र विलसति।

महाकवेः पण्डित्यस्य भाषागताधिकारस्य सुन्दरं निदर्शनं चित्रबन्धातिबन्धने दृश्यते। महाकविनैव चमत्कृतिरूपा समुद्भाविता नूतनैषा काव्यशैली। स्वशास्त्रीयज्ञानप्रकाशनं प्रति प्रबलमोहत्वाद् व्याकरणशास्त्रस्य अप्रचलितप्रयोगत्वात् श्लेषगर्भितयमकमयीपदावलीप्रयोगत्वात् कवेर्हृदयपक्षो दुर्बलः संजातस्तथा कलापक्षोऽतिप्रबलोऽभूत्। एवं सामान्यपाठकानामत्र प्रवेशो नास्ति सुगमः। विदग्धानां कृते नारिकेलफलसममपि प्राचुर्यमाधुर्यत्वात् हृदयावर्जमकस्ति।

अलंकाराणां प्रयोगे महाकविर्भारविरतिप्रवीणोऽस्ति। एषां हृदयाभिरामप्रयोगे स विशेषरूपेण रुचिमाधत्ते तथा चैषां सन्निवेशेन काव्यम् अधिकाधिकम् अलंकर्तुं प्रयतते। श्लेषयमकयोश्चमत्कृतिः स्थाने स्थाने दृश्यते। एवम् उपमोत्प्रेक्षारूपकार्थान्तरन्यासकाव्यलिंगनिदर्शनाऽतिशयोक्तिसमासोक्तिस्वभावोक्त्याद्यलंकाराणां सुमनोहरा छटा मनोहरति। उपमाप्रयोगेऽतिकुशलत्वाद् 'आतपत्रभारवि'रूपेण स प्रसिद्धिमगमत् (५।३९) पञ्चमसर्गे यमकस्य सौन्दर्यं सुप्रस्फुटितमस्ति (५।९)। पञ्चदशसर्गे चित्रालंकाराणां रुचिरः प्रयोगो विहितः। सर्वतोभद्रद्व्यक्षरैकाक्षरादिचित्रबन्धनिबन्धने महाकवेः प्रयत्नसाध्यः प्रयासः प्रशंसनीयः। एवं महाकावेरलंकारप्रियतायाः कलावादितायाः सुन्दरं प्रकाशनं जातमत्र। अनेन प्रकारेण अलंकारविनियोगेन तस्य पाण्डित्यं कल्पनावैचित्र्यं यथैव समभिव्यक्तं जातं तथैव एभिरलंकारैः काव्यमपि अर्थगौरवमण्डितं सरसं सुसज्जितमभूत्।

यद्यपि किरातार्जुनीयेऽस्ति प्राधान्यं कलावादितायाश्चमत्कारितायास्तथापि रसवेशलताया अपि प्राचुर्यं विद्यत एव। प्रभूतरसप्लावितमस्त्येवेदं काव्यम्। वीररसप्रधानम् ओजपरिपूर्णमिदं संस्कृतसाहित्यमहाकाव्येषु अनुपमस्थानमाप्नोति। यद्यप्यत्र वीररसोऽङ्गीभूतस्तथाप्यन्येषां रसानां यथास्थानं रुचिकरः संनिवशो दृश्यते। यथाऽप्सरसां मनोज्ञसौन्दर्यं निरूपणे वनविहारपुष्पावचयनजलक्रीडादिवर्णने शृङ्गारसस्य रमणीयमभिव्यञ्जनम् अभवत्।

एवमेव प्रकृतिसुषमाया मनोरमं हृद्यं चित्रणमभवत्। अनेन दृश्ये न काव्य सौन्दर्यं संवर्द्धितं भतम्। प्रकृतिसौन्दर्यस्य सूक्ष्मनिरीक्षणे महाकविर्भारविरतिकुशलोऽस्ति। रमणीरमणीयतायाः सूर्योदयचन्द्रोदयादिशोभाया ऋतुमनोहरताया मनोज्ञदृश्यविधाने विलसति तस्यातिसूक्ष्मादृष्टिः। अतो नैसार्गिकसुषमायाः साङ्गोपाङ्गं सजीवं सविशदं वैविध्यपरिपूर्णं वैचित्र्ययुक्तं चित्रं तदस्ति मनोभिराममत्यन्तप्रभावोत्पादकम्।

एवं विशिष्टगुणैः समलंकृतं किरातार्जुनीयं महाकाव्यं महाकविं भारविम् अत्युच्चस्थानम् अधिष्ठापयति।

भारवेरर्थगौरवमिति सुप्रसिद्धमेव।



महाकवि भारवि

विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न 'आतपत्र भारवि' का संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है। काव्यप्रभा को सर्वत्र बिखेरने वाली एकमात्र काव्य-कौमुदी 'किरातार्जुनीयम्' के द्वारा कवि ने संस्कृत कवि जगत् में अत्यन्त महनीय स्थान प्राप्त कर लिया है। जैनकवि रविकीर्ति ने 'कविकुलगुरु कालिदास' के साथ उल्लेख करके इनके अतिशय महत्त्व को प्रकाशित किया है। महाकाव्योचित सकल गुणों से अलंकृत यह ओज एवं उग्रतापूर्ण तथा वीररस महाकाव्यों में अन्यतम है और बृहत्त्रयी काव्यपरम्परा में इसका प्रमुख स्थान है। कवि को वैदुष्यपूर्ण प्रतिभा द्वारा अर्थ गौरव परिपूर्ण एक मनोहर काव्य की उद्भावना हुई है जिसमें भाषा के अद्भुत चमत्कार तथा अलंकारों की कमनीय छटा के साथ-साथ रसपेशलता भी दर्शनीय है। इसमें परि-मित शब्दों द्वारा व्यापक अर्थों का सन्निवेश किया गया है। व्याकरण-पिंगल-अलंकार-कामशास्त्र-नीतिशास्त्र-राजनीतिशास्त्र इत्यादि विविध विषयों का कवि प्रकाण्ड पण्डित है और अत्यन्त आकर्षक सरस सुन्दर ग्राह्य शब्दों की सहायता से इन शास्त्रों के गम्भीर तत्त्वों के हृदयंगम कराने की दिशा में कवि का प्रयास प्रशंसनीय है। कवि का शब्द भण्डार अपरिमित है, प्रत्येक पद का प्रयोग साभिप्राय है, कहीं पर भी इनका परिवर्तन क्षम्य नहीं। कवि ने स्वयं ही अर्थ की विशदता, सुस्पष्टता तथा पुनरुक्ति के अभाव को कविता का गुण स्वीकार किया है और 'भारवेरर्थगौरवम्' रूप से कवि के इसी अर्थगौरव पर सहृदय विद्वत्समाज सदा से ही मुग्ध होता चला आया है।

इस तरह किरातार्जुनीय में महाकवि भारवि की पांडित्यपूर्ण प्रतिभा का सुन्दर प्रकाशन हुआ है और अपनी विद्वत्ता की अभिव्यक्ति के प्रति महा-कवि का मोह भी है। संस्कृत साहित्य में अलंकृत काव्य शैली का कवि स्वयं जनक एवं प्रवर्त्तक है और इस तरह पूर्व से चली आ रही काव्य रचना पद्धति को एक नवीन मोड़ प्रदान किया है। इस शैली के कारण कालिदास, अश्वघोष

इत्यादि में प्राप्त होने वाली सहज स्वाभाविकता ने कृत्रिमाकलावादिता का स्थान ले लिया है और इससे काव्य में भावपक्षकी अपेक्षा कलापक्ष को प्रधानता मिल गई है। इसी परम्परा का पालन एवं संवर्द्धन भट्टि, माघ, श्रीहर्ष इत्यादि परवर्ती कवियों में पाया जाता है।

इस अलंकृत शैली के माध्यम से महाकवि द्वारा अपने विविध शास्त्रीय ज्ञान का समावेश किये जाने के कारण निश्चित रूप से यह महाकाव्य नारिकेल के सदृश अत्यन्त कठिन है और इसलिए सामान्य पाठकों के लिए दुष्प्रवेश्य भी है, परन्तु रसपेशलता होने से सहृदय विदग्ध पाठकों के लिए हृदयावर्जक है। अर्थ गौरव होने पर भी कवि ने कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है; दुरूह विषयों को बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है। महाभारत के एक लघु कथानक को वृहत् कलेवर वाले महाकाव्य का स्वरूप प्रदान कर भारवि ने अपनी अद्भुत् काव्य प्रतिभा एवं विलक्षण वर्णनशक्ति का परिचय दिया है। भाव-गाम्भीर्य, अर्थगौरव, कल्पना-कमनीयता, वर्णन-वैभव, शब्दविन्यास, भाषा के श्लिष्ट बन्धन के साथ प्रसादमयता, सरसता, गम्भीरता के साथ भाषा की ओजस्विता, रसपेशलता, अलंकारों का चमत्कारात्मक सन्निनवेश, छन्दनिर्वाह, काव्यशैली की कलात्मकता, प्रकृति चित्रण की मनोहारिता, संवादों की रोचकता, चरित्र चित्रण की सजीवता; व्याकरणशास्त्रीय, राजनैतिक, व्यवहारिक, लोकोपयोगी इत्यादि तथ्यों का कविता की सरस रीति द्वारा प्रकाशनादि विविध गुणों का सुन्दर संगम भारवि के इस महाकाव्य में एकत्र ही दृष्टिगोचर होता है जिससे कवि की काव्यभारती हठात् सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। और ये ही विशेषताएँ महाकवि को साहित्याकाश में अति समुन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित करती है।

इसीलिए कवि भारवि की भारती की प्रभूत प्रशंसा की गई है—

विमदव्यक्तसौरभ्या भारती भारवः कवेः।
धत्ते बकुलमालेव विदग्धानां चमत्क्रियाम् ॥

× × ×

प्रकाशं सर्वतो दिव्यं विदग्धानां सतां मुदे।
प्रबोधनपरा हृद्या भारवेरिव भारवेः ॥

× × ×

प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्या कृतिः कैरिव नोपजीव्या ॥

समय :

महाकवि भारवि ने अपनी कृति में अपने माता-पिता, गुरु, आश्रयदाता, समय, निवास स्थानादि के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। अतः प्रबल प्रमाणों के अभाव में इनके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयात्मक कथन सम्भव नहीं है। फिर भी बाह्य तथा कुछ अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर विद्वानों ने इन समस्याओं के समाधान का प्रयास किया है।

शक संवत् ५५६ तदनुसार ई० सन् ६३४ के ऐहोल शिलालेख पर कवि का उल्लेख है। सप्तम शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकवि बाणभट्ट ने कालिदास का सादर उल्लेख किया है, पर भारवि का नहीं। अवन्तिसुन्दरीकथा तथा अवन्तिसुन्दरीकथासार के अनुसार दामोदर भारवि ही महाकविदण्डी के प्रपितामह हैं तथा इनको चालुक्यबंश के संस्थापक विष्णुवर्धन (६१५ ई०) का सभापण्डित बतलाया गया है। गुममरेड्डीपुर के अभिलेख के अनुसार गंगनरेश अविनीत के पुत्र दुर्विनीत ने किरातार्जुनीय के पञ्चदश सर्ग पर एक संस्कृत टीका लिखी है। पल्लव सम्राट सिंह विष्णु ने (ई० सन् ५७५–६०० भारवि को आश्रय प्रदान किया था। वैयाकरण वामनजयादित्य ने अपनी काशीकावृत्ति में पाणिनीसूत्र (१।३।२३) की व्याख्या में किरातार्जुनीय के एक श्लोकांश (३।१४) को उद्धृत किया है। इसी प्रकार मैकडॉनल, याकाबो, कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों के मतों तथा भारतीय विद्वानों के मतों की भी समीक्षा करने पर भारवि का समय ई० सन् ५५० से ६१५ के बीच स्वीकार करना अधिक उचित मालूम पड़ता है।

भाषा शैली :

महाकवि भारवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इसीलिए अपने भावों कल्पनाओं, अनुभूतियों को काव्य में सरस एवं हृदयावर्जकरूप में अभिव्यक्त करने तथा उनको साकार एवं सजीवरूप प्रदान करने में कवि सफल हुआ है। वर्ण्य विषय तथा पात्रों के अनुकूल हृदयग्राही शब्दयोजना है। दीर्घ समास नहीं

हैं। अर्थगौरवयुक्त किन्तु कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हुआ है। वीररस के निरूपण में ओजगुण की अजस्विता तथा श्रृंगाररस चित्रण में आह्लादक माधुर्य गुण की मधुरता सहृदय हृदयावर्जक है। सामान्यतः प्रसादगुण विशिष्ट होने से भाषा मे प्रवाहमयता है। कालिदास से भिन्न वैदर्भीरीति की छटा इस महाकाव्य मे दर्शनीय है। कवि का विषय-वर्णन सर्वाङ्गपूर्ण एवं विशद है। सामान्य विषय का भी निरूपण सुरुचि किया है। सर्वत्र कवि का वर्णन कौशल तथा शब्द विलास प्रशंसनीय है। इसी तरह विविध छन्दों की सुषमा बहुत ही हृदयाकर्षक है।

कवि के पाण्डित्य तथा भाषा अधिकार का सुन्दर प्रकाशन चित्रबन्ध-निबन्धन में हुआ है। इस अलंकृत काव्यशैली का कवि स्वयं ही जनक है और चमत्कारविशिष्ट इस नूतन रचना पद्धति की ओर उत्तरवर्ती कवियों को प्रेरित किया है। स्वशास्त्रीय ज्ञान प्रकाशन के प्रति अतिशय मोह, अप्रचलित व्याकरण के प्रयोग, श्लेषगर्भित समास, यमकमयी दुरूह पदावली का प्रयोग इत्यादि कारणों से कवि का भावपक्ष दुर्बल तथा कलापक्ष प्रबल हो गया है तथापि काव्यकला एवं पाण्डित्य की दृष्टि से विद्वानों में यह काव्य अधिक समादृत है। क्लिष्ट होने से सामान्य पाठकों के लिए यद्यपि यह दुष्प्रवेश्य है फिर भी नारिकेलसम बाह्यरुक्षता होने पर भी अन्तः में विदग्धों के लिए पर्याप्त मधुरता विद्यमान है। जैसा कि व्याख्याकार मल्लिनाथ ने स्वयं उद्घोषित किया है—

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि यद् विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

अलंकार :

अलंकारों के समुचित प्रयोग तथा आकर्षक संयोजना में भारवि अत्यन्त प्रवीण है। इनके हृदयाभिराम प्रयोग में उन्होंने विशेष रुचि दिखलाई है तथा रुचिकर अलंकारों के संनिवेश से काव्य को यथासम्भव अलंकृत करने का प्रयत्नसाध्य प्रयास किया है। शब्दालंकारों में श्लेष तथा यमक का बहुत ही चमत्कारात्मक प्रयोग किया है। इसी तरह उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तर-

न्यास, काव्यलिङ्ग, निदर्शना, समासोक्ति, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति इत्यादि अर्थालंकारों की मनोहर छटा स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। श्लेष अनुप्राणित उपमा का यह हृदयहारी चित्रण नर्शनीय है—

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥

किरात० १ ३१

उपमा के प्रयोग में कवि अत्यन्त कुशल है। इसके मनोज्ञ चित्रण के कारण इनकी 'आतपत्र भारवि' रूप से प्रशिद्धि है। अन्तरिक्ष में वात्याप्रेरित मण्डलाकार में उड़ते हुए पीतवर्ण के पराग कनकमय अतपत्र की लक्ष्मी को धारण कर रहे हैं—

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धृतः सरसिजसम्भवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥

किरात० ५।३९

अलंकारों के माध्यम से कवि की कल्पना-कमनीयता का सुन्दर प्रकाशन हुआ है तथा काव्य को सरस तथा अर्थगौरवयुक्त बनाने में इनका विशेष योगदान है। पञ्चम सर्ग में यमक की अनूठी छटा प्रस्फुटित हुई है।

पृथुकदम्बकदम्बकराजितं ग्रथितमालतमालवनाकुलम्।
लघु तुषारतुषारजलश्च्युत धृतसदानसदानवदन्तिनम् ॥

किरात० ५।९.

सर्वतोभद्र, द्व्यक्षर, एकाक्षरादि, चित्रालंकारों का चित्ताकर्षक प्रयोग पञ्चदश सर्ग में हुआ है।

इस प्रकार भारवि की अलंकारप्रियता कलावादिता के कारण काव्य का बाह्यस्वरूप बहुत ही सुसज्जित है, पर भावपक्ष अवश्य ही कुछ कमजोर पड़ गया है।

रस :

रस ही काव्य की आत्मा है और महाकवि भारवि का महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' अर्थगौरव तथा अलंकृति के साथ-साथ रस से भी पूर्णतः आप्लावित हैं। इसमें वीररस अंगी तथा श्रृंगारादि अंग हैं। संस्कृतसाहित्य में वीररस प्रधान तथा ओजपूर्णका यह अनुपम महाकाव्य है। इस रस की अभिव्यक्ति में कवि को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। भीमसेन के ओजस्वितापूर्ण वचनों की सजीवता के कारण इस रस की सुन्दर सृष्टि हुई है और त्रयोदश से अष्टादश सर्ग तक युद्ध चित्रण के प्रसङ्ग में यह वीररस अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रस्फुटित हुआ है। यथा—

उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्याः।
गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः॥

किरात० १७।६३

यद्यपि वीररस की प्रधान धारा कवि ने काव्य मे प्रवाहित कर दी है फिर भी रसराज श्रृंगार के निरूपण में भी वह अत्यन्त पटु है। अष्टम से दशम सर्ग तक अप्सराओं के मनोज्ञ सौंदर्य, वन विहार, पुष्पावचयन, जलक्रीडा, प्रणयकेलि आदि वर्णनों में इस रस का सुन्दर निरूपण हुआ है।

यथा—

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः॥

किरात० ८।४७

इसी तरह वीररस के अंगरूप में महाकवि ने अन्य रसों का भी यथास्थान समुचित संनिवेश किया है।

प्रकृति चित्रण :

महाकवि भारवि ने प्रकृति सौन्दर्य के मनोरम मुग्धकारी चित्रण द्वारा काव्यसौन्दर्य की समृद्धि की है। प्रकृतिसौन्दर्य के सूक्ष्म निरीक्षण की कवि में

अद्‌भुत क्षमता है। इसीलिए उसने प्रकृति की सुरम्य नैसर्गिक सुषमा का साङ्गोपाङ्ग सविशद सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रकृति-माधुरी के मनोरम चित्रण के कारण कवि की 'आतपत्र भारवि' रूप से प्रसिद्धि है। प्रफुल्लित स्थलपद्‌म से वायु द्वारा प्रेरित तथा अन्तरिक्ष में मण्डलाकार रूप में फैला हुआ पराग कनकमय आतपत्र की कमनीयता को धारण कर रहा है। (१।३९) चतुर्थ सर्ग में चित्रित शरद् ऋतु का चित्र संस्कृतसाहित्य में अनुपम है। इस प्रकार का नैसर्गिक, हृदयग्राही तथा अतीव प्रभावोत्पादक वर्णन अन्यत्र सुलभ नहीं है। शरद् का सुहावना स्वरूप बहुत ही मनोमुग्धकारी है। आकाश में उड़ती हुई शिरीषसम हरित शुकों की पंक्ति विद्रुमरूप अपने रक्तमुख में पीतवर्ण की फलसहित धान की शिखा लिए हुए इन्द्रधनुष के समान सुशोभित हो रही हैं—

मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितः शिखाः पिसङ्गीः कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिव्यक्तशिरीषकोमला धनुः श्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति॥

किरात० ४।३६

कवि की यह बहुत स्वाभाविक कल्पना है, किन्तु शरद् ऋतु में भी इन्द्रधनुष की कल्पना बहुत ही अनूठी है और इससे कवि की प्रवण विचारशक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

इसी प्रकार पञ्चम में हिमालय, अष्टम में गन्धर्वों और अप्सराओं की जलक्रीडा, पुष्पचयन, नवम में सन्ध्या, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, सूर्योदय, पानगोष्ठी, दशम सर्ग में षड् ऋतुओं का कवि ने अत्यन्त मनमोहक दृश्य चित्रित किया है। इससे सुस्पष्ट होता है कि प्रकृति तथा युवतियों के सौन्दर्य निरीक्षण तथा चित्रण में भारवि अतिकुशल हैं। किरातार्जुनीय में प्रस्तुत वर्णन से उनकी अति सूक्ष्म पैनी दृष्टि का परिचय मिलता है और इस तरह अपने प्रकृति-प्रेम को प्रकाशित किया है।

इसी तरह महाकवि ने नीतिशास्त्र तथा लोकव्यवहार सम्बन्धी तत्त्वों को काव्य में कूट-कूट कर भरा है। नीतिविषयक गम्भीर तथ्यों तथा जीवनो-

पयोगी अपने अनुभवों को सूक्तियों के माध्यम से सुष्ठु प्रकाशित किया है। यथा निम्नलिखित कवि की एक सूक्ति ने किसी के जीवन की रक्षा की, किसी को हत्यारूप जघन्य अपराध से बचाया और स्वयं कवि को अपरिमित धन मे अक्षय कीर्ति प्रदान की—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥२।३०॥

इस प्रकार 'भारवेरर्थगौरवम्' रूप से सुप्रसिद्ध महाकवि भारवि का संस्कृत साहित्याकाश में अत्यन्त समुन्नत स्थान है ।

प्रस्तुत पुस्तक को यह स्वरूप प्रदान करने में अनेकानेक ग्रन्थों से स्वच्छन्दतापूर्वक सहायता ली गई है। संपूजनीय गुरुजनों के आशीर्वचन, सुहृज्जनों के सुन्दर सहयोग तथा प्रकाशक महोदय की प्रेरणा से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। मुद्रणालय के सत्त्वाधिकारी महोदय ने बहुत ही तत्परता से इस कार्य को पूरा किया है। एतदर्थ सभी ग्रन्थकारों, गुरुजनों, सुहृदों, प्रकाशक महोदय तथा मुद्रणालय के सभी कर्मचारियों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। पुस्तक में जो भी गुण है, वह सब संपूज्य गुरुजनों की कृपा का प्रसाद है और विद्यमान दोष मेरी अनवधानता, अल्पज्ञता। अतः सविनय निवेदन है कि सहृदय विद्वज्जन तथा छात्रगण इसमें स्थित मुद्रण सम्बन्धी तथा अन्य दोषों का संशोधन कर लेने की कृपा करेंगे ।

मानसरोवर, काशी
गङ्गा दशहरा, वि० सं० २०३७
शनिवार जून, १९८०

विनीत
अमलधारी सिंह

श्लोकानुक्रमणिका

अलंकारस्य लक्षणम्

शब्दालंकारः

अनुप्रास : वर्णसाम्यमनुप्रासः। छेकवृत्तिगतो द्विधा।
सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः। एकस्याप्यसकृत्परः। काव्यप्रकाशः
अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्। साहित्यदर्पण

यमकम् : अर्थे सत्यर्थभिन्नाना वर्णानां सा पुनः श्रुतिः। काव्यप्रकाशः
सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥ साहित्यदर्पण

श्लेष : 'वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा॥' काव्यप्रकाशः
श्लेषः स वाक्य एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्' काव्यप्रकाशः
श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते। साहित्यदर्पण

अर्थालंकारः

अतिशयोक्तिः निगीर्याध्यवसानं तु प्रकृतस्य परेण यत्।
प्रकृतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्॥
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः।
विज्ञेयातिशयोक्तिः सा। काव्यप्रकाशः
सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते। साहित्यदर्पण

अर्थान्तरन्यासः सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥ काव्यप्रकाश

उत्पेक्षा : संभावनमयोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। काव्यप्रकाशः
भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथम द्विविधा मता॥ साहित्यदर्पण

उदात्तम् : उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। काव्यप्रकाशः
लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।
यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरित भवेत्॥ साहित्यदर्पण

उपमा : साधर्म्यमुपमा भेदे। पूर्णा लुप्ता च। काव्यप्रकाशः

एकावली : स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथापूर्वं परं परम्।
विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा॥ काव्यप्रकाशः

काव्यलिङ्गम् : काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता। काव्यप्रकाशः
हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते। साहित्यदर्पण

दृष्टान्तः : दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्। काव्यप्रकाशः
दृष्टान्तस्तु सधमस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्। साहित्यदर्पण

परिकारः : विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। काव्यप्रकाशः

विषमः : क्वचिद्यदतिवैधर्म्यान्नि श्लेषो घटनामियात्।
कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद् भवेत्।
गुणक्रियाभ्यां कार्यस्य कारणस्य गुणक्रिये।
क्रमेण च विरुद्धे यत्स एष विषमो मतः॥ काव्यप्रकाशः

संसृष्टि : सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः। काव्यप्रकाशः
मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते। साहित्यदर्पण

समासोक्तिः : परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः। काव्यप्रकाशः

सहोक्तिः : सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्। काव्यप्रकाशः

●

॥ श्रीः ॥

अथ किरातार्जुनीयम्

प्रथमः सर्गः

अर्धाङ्गीकृतदाम्पत्यमपि गाढानुरागि यत् ।
पितृभ्यां जगतस्तस्मै कस्मैचिन्महसे नमः ॥
आलम्बे जगदालम्बं हेरम्बचरणाम्बुजम् ।
शुष्यन्ति यद्रजःस्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः ॥

तद्दिव्यमव्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे ।
यत्प्रकाशात्प्रलीयन्ते मोहान्धतमसश्छटाः ॥
वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत् ।
वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ॥

मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षयाः ।
तत्किरातार्जुनीयाख्यं काव्यं व्याख्यातुमिच्छति ॥
नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ॥
नानानिबन्धविषमैकपदैर्नितान्तं
साशङ्कचङ्क्रमणखिन्नधियामशङ्कम् ।
कर्तुं प्रवेशमिह भारविकाव्यबन्धे
घण्टापथं कमपि नूतनमातनिष्ये ॥

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

अत्र तत्रभवान् भारविनामा कविः 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' इत्याद्यालङ्कारिकवचनप्रामाण्यात् काव्यस्यानेकश्रेयःसाधनताम्, 'काव्यालापांश्च वर्जयेत्' इति निषेधशास्त्रस्यासत्काव्यविषयतां च पश्यन् किरातार्जुनीयाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुश्चिकीर्षितार्थाविघ्नपरिसमाप्तिसम्प्रदायाविच्छेदलक्षणफलसाधनत्वात् 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इत्याद्याशीर्वादाद्यन्यतमस्य प्रबन्धमुखलक्षणत्वाच्च वनेचरस्य युधिष्ठिरप्राप्तिरूपं वस्तु निर्दिशन् कथामुपक्षिपति—

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥ १॥

घण्टापथ—श्रिय इति। आदितः श्रीशब्दप्रयोगाद्वर्णगणादिशुद्धिर्नातीवोपयुज्यते। तदुक्तम् 'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणपतोऽपि वा।' इति। कुरूणा निवासाः कुरवो जनपदाः। 'तस्य निवासः' इत्यण्प्रत्ययः। जनपदे लुप्। तेषाम् अधिपस्य सम्बन्धिनीम्। शेषे षष्ठी। श्रियो राजलक्ष्म्याः। 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी। पाल्यतेऽनयेति पालनी ताम् पालनीं प्रतिष्ठापिकामित्यर्थः। प्रजारागमूलत्वात् सम्पद इति भावः 'करणाधिकरणयोश्च' इति करणे ल्युट्। 'टिड्ढाणञ—इत्यादिना ङीप्। प्रजासु जनेषु विषये। 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः। वृत्तिं व्यवहारं विदितुं ज्ञातुं यं वनेचरम् अयुङ्क्त नियुक्तवान्। वर्णः प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी ब्रह्मचारी। तदुक्तम्—'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥ एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥' एतदष्टविधमैथुनाभावः प्रशस्तिः। 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' इतीनिप्रत्ययः। तस्य लिङ्गं चिह्नमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गी ब्रह्मचारिवेषवानित्यर्थः। स नियुक्तः वने चरतीति वनेचरः किरातः। 'भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः। 'चरेष्टः' इति टप्रत्ययः। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इत्यलुक्। विदितं वेदनमस्यास्तीति विदितः परवृत्तान्तज्ञानवानित्यर्थः। 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच् प्रत्ययः। अथवा कर्तरि कर्मधर्मोपचाराद्विदितवृत्तान्तो विदित इत्युच्यते। उभयत्रापि 'पीता गावः', 'भुक्ता ब्राह्मणाः', 'विभक्ता भ्रातरः'

इत्यादिवत् साधुत्वम् । न तु कर्तरि क्तः । सकर्मकेभ्यस्तस्य विधानाभावात् । अत एव भाष्यकारः—'अकारो मत्वर्थीयः । विभक्तमेषामस्तीति विभक्ताः, पीतमेषामस्तीति पीताः इति सर्वत्र । अथवोत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः । विभक्तधना विभक्ता, पीतोदकाः पीताः' इति । अत्र लोपशब्दार्थमाह कैयटः—'गम्यार्थस्याप्रयोग एव लोपोऽभिमतः । 'विभक्ता भ्रातरः' इत्यत्र च धनस्य यद् विभक्तत्वं तद् भ्रातृषूपचरितम् । 'पीतोदका गावः' इत्यत्रापि उदकस्य पीतत्वं गोष्वारोप्यते' इति । तद्वदत्रापि वृत्तिगतं विदितत्वं वेदितरि वनेचर उपचर्यते । एतेन 'वनाय पीतप्रतिबद्धवत्साम्', 'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या' एवमादयो व्याख्याताः । अथवा विदितः विदितवान् । सकर्मकादप्यविवक्षिते कर्मणि कर्तरि क्तः । यथा 'आशितः कर्ता' इत्यादौ । यथाऽऽहुः—"धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसङ्ग्रहात् । प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥" इति । द्वैतवने द्वैताख्ये तपोवने । यद्वा द्वे इते गते यस्मात् तद् द्वीतम् । द्वीतमेव द्वैतं तच्च तद्वनञ्च तस्मिन् । शोकमोहादिवर्जित इत्यर्थः । युधि रणे स्थिरं युधिष्ठिरं धर्मराजम् । 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' इत्यलुक् । 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' इति षत्वम् । समाययौ सम्प्राप्तवान् । अत्र 'वने वनेचरः' इति द्वयोः स्वरव्यञ्जनसमुदाययोरेकधैवावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासो नामालङ्कारः । अस्मिन् सर्गे वंशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणम्—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति ॥१॥

अन्वयः—कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यं (वनेचरं युधिष्ठिरः) अयुङ्क्त । वर्णिलिङ्गी विदितः सः वनेचरः द्वैतवने युधिष्ठिरं समाययौ ॥१॥

शब्दार्थः—कुरूणां = कुरुसंज्ञया प्रसिद्धानां जनपदानां कुरुनामनृपाणां निवासाः कुरवो जनपदविशेषाः तेषां; कुरुनामक राजाओं के निवासस्थान, कुरु देशों के । अधिपस्य = अधिपतेः पालकस्य नृपतेः दुर्योधनस्य; अधिपति, पालक राजा दुर्योधन की । श्रियः = राजलक्ष्म्याः, राजलक्ष्मी का । पालनीं = पालनकारिणीं सुदृढकारिणीं स्थितिसम्पादिनीं सुप्रतिष्ठापिकां; पालन, सुदृढ़ करने वाली, सुप्रतिष्ठित, चिरस्थाई बनाने वाली । प्रजासु = जनेषु विषये प्रकृतिषु संबन्धे; प्रजाजनों के संबन्ध में की जाने वाली । वृत्तिं = वार्त्तां व्यवहारं; प्रजापालन

की नीति, व्यवहार को। वेदितुं = विज्ञातुं; जानने के लिए। यं = यं वनेचरं किरातं; जिस वनेचर किरात को। (युधिष्ठिरः = युधिष्ठिर ने)। अयुङ्क्त = नियुक्तवान् संयोजितवान् गुप्तचररूपेण हस्तिनापुरं संप्रेषितवान्; नियुक्त किया था, गुप्तचर के रूप में हस्तिनापुर भेजा था। वर्णिलिङ्गी = ब्रह्मचारिवेषधारी ब्रह्मचारिस्वरूपः; ब्रह्मचारी के वेष को धारण करने वाला। विदितः (सन्) = संविज्ञातसकलसमाचारः, शत्रोः दुर्योधनस्य सकलवृत्तान्ताभिज्ञः शत्रुरहस्यवेत्ता विज्ञाताशेषज्ञातव्यः; शत्रु राजा दुर्योधन के समस्त गुप्त रहस्य, वृत्तान्त को जानने वाला, जानने योग्य समस्त रहस्य को जानने वाला। सः = वह। वनेचरः = आरण्यकः किरातः; वन में विचरण करने वाला किरात। द्वैतवने = रागद्वेषविरहिते द्वैतनामके शान्ते तपोवने; रागद्वेष, सुखदुःख इत्यादि द्वन्द्वों से रहित द्वैत नामक शान्त तपोवन में। युधिष्ठिरं = पाण्डवज्येष्ठं पाण्डुपुत्रं धर्मराजं युधिष्ठिरं; पाण्डवों में ज्येष्ठ पाण्डु के पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर के पास। समाययौ = समागतवान् संप्राप्तवान् समाजगाम; आया, उपस्थित हुआ ॥१॥

संस्कृतव्याख्या—राज्यभ्रष्टो युधिष्ठिरः पुनस्तदधिगन्तुं प्रजां प्रति शासनाधिरूढस्य तस्य दुर्योधनस्य प्रजापालननीति विज्ञातुं ब्रह्मचारिवेषधृतम् एकं किरातं हस्तिनापुरं संप्रेषितवान्। यतः राज्ञः राजलक्ष्मीः प्रजानुरञ्जनादेव सुप्रतिष्ठिता भवति। अन्यथा सा स्थायिनी न भवति। संविज्ञातसकलसमाचारः स गुप्तचरो युधिष्ठिरं प्रत्यागच्छति। कुरुदेशस्य अधिपतेर्धृतराष्ट्रपुत्रस्य दुर्योधनस्य राजलक्ष्म्याः पालनकारिणीं सुप्रतिष्ठापिकां प्रजाजनेषु संबन्धे वर्त्तमानां वार्तां प्रजापालननीतिं विज्ञातुं सम्यक्परिज्ञानाय राज्यभ्रष्टो वने भ्रातृभिः द्रौपद्या सह निवसन् युधिष्ठिरो यं किरातं नियुक्तवान् गुप्तचररूपेण हस्तिनापुरं संप्रेषितवान् आसीत्। ब्रह्मचारिस्वरूपधृतः संविज्ञाताशेषज्ञातव्यविषयः स एवारण्यकः गुप्तचरः किरातः रागद्वेषविरहिते द्वैतसंज्ञके शान्ते तपोवनेऽरण्ये पाण्डवज्येष्ठं धर्मराजं युधिष्ठिरं प्रति समाजगाम ॥१॥

हिन्दी व्याख्या—राज्यभ्रष्ट युधिष्ठिर ने पुनः राज्यप्राप्ति की अभिलाषा से प्रजाजनों के प्रति सिंहासनाधिरूढ़ दुर्योधन के व्यवहार को जानने के लिए ब्रह्मचारी के वेष को धारण करने वाले एक किरात को गुप्तचर के रूप में

हस्तिापुर भेजा था। क्योंकि प्रजापालन की नीति के ऊपर ही राजलक्ष्मी की प्रतिष्ठा है। यदि राजा को अपनी प्रजा का अनुराग प्राप्त नहीं है तो वह कभी भी उनके ऊपर दीर्घकाल तक शासन नहीं कर सकता। इसीलिए दुर्योधन की नीति को जानने के लिए युधिष्ठिर अत्यधिक उत्सुक है। दुर्योधन के समस्त समाचार को जानकर वह गुप्तचर युधिष्ठिर के पास वापस लौट कर आया।

कुरुदेश के अधिपति दुर्योधन की राजलक्ष्मी को सुप्रतिष्ठित बनाने वाली प्रजाजनों के सम्बन्ध में की जाने वाली प्रजापालन की नीति को जानने के लिए युधिष्ठिर ने गुप्तचर के रूप में जिस किरात को नियुक्त किया था अर्थात् हस्तिनापुर भेजा था। ब्रह्मचारी के वेष को धारण करने वाला शत्रु के सम्बन्ध में जानने योग्य सभी रहस्यों को जानता हुआ वन में विचरण करने वाला वह किरात रागद्वेष, सुःखदुःख इत्यादि द्वन्द्वों से रहित द्वैत नामक तपोवन में राज्य से भ्रष्ट होकर भाइयों तथा द्रोपदी के साथ निवास करने वाले युधिष्ठिर के पास वापस लौट कर आया।

विशेष :—प्रस्तुत श्लोक में गुप्तचर के अतिशय महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

टिप्पणी :

श्रियः = श्रयति हरि सा श्रीः अथवा श्रीयते अनेन या सा श्रीः। तस्याः √श्रि + क्विप्। 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' सूत्र से कर्म अर्थ में षष्ठी का प्रयोग।

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति तथा मङ्गल के लिए महाकवि ने इस महाकाव्य का प्रारम्भ माङ्गलिक 'श्री' शब्द से किया है—'मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि भवन्त्यायुष्मतपुरुषकाणि चाध्येतारश्च वृद्धियुक्ता यथा स्युः'—महाभाष्य १।१।३ अह्निक।

मङ्गलाचरण के त्रिविध रूप :

१. आशीर्वादात्मक २. नमस्कारात्मक ३. वस्तुनिर्देशात्मक—

'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्'

प्रस्तुत महाकाव्य का मङ्गलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है। महाकाव्य के लक्षण के अनुसार प्रथम ही श्लोक में कथावस्तु का निर्देश किया गया है।

कुरूणाम् = कुरूणां निवासाः कुरवः जनपदाः, तेषां । 'तस्य निवासः' से 'अण्' प्रत्यय—कुरु + अण् । किंतु 'जनपदे लुप्' से अण् का लोप । प्रदेश का नाम होने से कुरु शब्द बहुवचन में ।

अधिपस्य = अधिपातीति अधिपः, तस्य । अधि + √पा + क । 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से 'क' प्रत्यय तथा 'शेषे षष्ठी' से षष्ठी विभक्ति ।

पालनीम् = पाल्यतेऽनयेति पालनी, ताम् । √पाल् + ल्युट् करणे + ङीप् स्त्री 'करणाधिकरणयोश्च, से करण अर्थ में ल्युट् ।

प्रजासु = प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, तासु । प्र + √जन् + ड + टाप् स्त्री ।

वृत्तिम् = वर्ततेऽनयेति वृत्तिः, ताम् । √वृत् + क्तिन् करणे ।

वर्णिलिङ्गी = वर्णः प्रशस्तिः ब्रह्मचर्यमस्यास्तीति वर्णी । वर्णिनः लिङ्गं वर्णि-लिङ्गं, षष्ठी तत्पुरुष । वर्णिलिङ्गमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गी ।

वर्ण + इनि = वर्णिन् । 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' से इनि प्रत्यय । वर्णिलिङ्ग + इनि = वर्णिलिङ्गिन् ।

वर्ण का अभिप्राय है—प्रशस्ति अथवा अष्टविध मैथुन का अभाव (स्मरण-कीर्तन-केलि-प्रेक्षण-गुह्यभाषण-संकल्प-अध्यवसाय-क्रियानिवृत्ति) । लिङ्ग का अभिप्राय है—प्रज्ञापक चिह्न, लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । इस प्रकार वर्णिलिङ्गी का अर्थ है—अष्टविध मैथुन से रहित ब्रह्मचारी के चिह्न; वेष को धारण करने वाला ।

युधिष्ठिरः = युधि स्थिरः युधिष्ठिरः तम् । अलुक् तत्पुरुष समास । 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' इत्यलुक् । 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' इति षत्वम् ।

वनेचरः = वने चरतीति वनेचरः । अलुक् तत्पुरुष । वने + √चर् + ट कर्त्तरि । 'चरेष्टः' से ट प्रत्यय तथा 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' से विभक्ति का लोप नहीं ।

द्वैतवने = द्वे इते गते यस्मात्तद् द्वीतम् । द्वि + √इ + क्त । द्वीतमेव द्वैतम् । द्वीत + अण् स्वार्थे । द्वैतं च तद्वनं च इति द्वैतवनं, तस्मिन् । कर्मधारय । अधिकरणे सप्तमी ।

वेदितुम् = √विद् + तुमुन् । 'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' से तुमुन् ।

विदितः = (१) विदितं वेदनमस्यास्तीति विदितः। √विद्+क्त भावे नपुंसके।
विदितम्+अच् मत्वर्थीय = विदितः 'अर्श आदिभ्योऽच्' से अच् प्रत्यय।
(२) √विद्+क्त कर्मणि विदितवृत्तान्तः। (३) √विद्+क्त कर्तरि विदितवान्। (४) √विद्+क्विप् = विद्+इतच् = विदितः।

अयुङ्क्त = √युज् लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन।

समाययौ = सम्+आ+√या लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन।

कोष :

श्रीः = लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया—इत्यमरः

अधिपः = अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः—इत्यमरः

प्रजा = प्रजा स्यात्सन्ततौ जने—इत्यमरः

वृत्तिः = वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तस्यादयाह्वयः—इत्यमरः
'वृत्तिः प्रवृत्तिराख्याता वृत्तिर्वचनमुच्यते'
'वृत्तिर्वार्त्ता वृत्तमपि'

वनम् = अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्—इत्यमरः

वनेचरः = वनेचरो वनचरो वनप्रिय इति स्मृतः
भेदाः किरातशबरपुलिन्दाम्लेच्छजातयः—इत्यमरः

वर्णी = वर्णी स्याल्लेखके चित्रकरेऽपि ब्रह्मचारिणि—इति विश्वः

अलंकार—चतुर्थ चरण 'वने वनेचरः' में स्वरव्यञ्जनसमूह 'वने' की सकृत्, एक बार स्वरूपतः तथा क्रमतः आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।
'वर्णसाम्यमनुप्रासः। छेकवृत्तिगतो द्विधा। सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः'
'छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा' साहित्यदर्पण
(किन्तु आचार्य मल्लिनाथ ने वृत्त्यनुप्रास स्वीकार किया है)

छन्दः—प्रत्येक चरण में जगण (। ऽ ।), तगण (ऽ ऽ ।), जगण (। ऽ ।), रगण (ऽ । ऽ) होने से वंशस्थ छन्द—

'जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ'

। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ऽ
श्रियःकु	रूणाम	धिपस्य	पालनीं

●

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपन्तेन निवेदयिष्यतः ।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥२॥

घण्टापथ—कृतप्रणामस्येति । कृतप्रणामस्य तत्कालोचितत्वात् कृतनमस्कारस्य । सपत्नेन रिपुणा दुर्योधनेन 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः । जितां स्वायत्तीकृतां महीं महीभुजे युधिष्ठिराय । क्रियाग्रहणात् सम्प्रदानत्वम् निवेदयिष्यतः ज्ञापयिष्यतः । 'ऌटः सद्वा' इति शतृप्रत्ययः । तस्य वनेचरस्य । मनो न विव्यथे । कथमीदृगप्रियं राज्ञे विज्ञापयामीति मनसि न चचालेत्यर्थः । 'व्यथभयचलनयोः' इति धातोर्लिट् । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयते—न हीति । हि यस्मात् । हितमिच्छन्तीति हितैषिणः स्वामिहितार्थिनः पुरुणा मृषा मिथ्याभूतं प्रियं प्रवक्तुं नेच्छन्ति अन्यथा कार्यविघातकतया स्वामिद्रोहिणः स्युरिति भावः । 'अमौढ्यममान्द्यममृषाभाषित्वमभ्यूहकत्वं चेति चारगुणाः' इति नीतिवाक्यामृते ॥२॥

अन्वयः—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य (वनेचरस्य गुप्तचरस्य) मनः न विव्यथे । हि हितैषिणः (कदापि) मृषा प्रियं (वचः) प्रवक्तुं न इच्छन्ति ॥२॥

शब्दार्थ—कृतप्रणामस्य = कृतः विहितः प्रणामः नमस्कारः येन तस्य, तत्समयोचितविहितनमस्कारस्य कृताभिवादनस्य (वनेचरस्य); कर लिया है नमस्कार जिसने, समय के अनुकूल युधिष्ठिर को नमस्कार करने वाले । सपत्नेन = शत्रुणा रिपुणा दुर्योधनेन, शत्रु दुर्योधन के द्वारा । जितां = स्वायत्तीकृतां स्वाधीनीकृताम् आत्मसात्कृतां पुरा द्युतक्रीडया कपटेन छलेन अधुना नयेन; जीत ली गई, अपने आधीन, अधिकार में कर ली गई, पहले द्यूतक्रीडा रूप कपट द्वारा और अब सुन्दर नीति से । महीं = पृथिवीं राज्यं; पृथिवी, राज्य को । महीभुजे = भूपतये राज्ञे युधिष्ठिराय; पृथिवी का पालन करने वाले राजा युधिष्ठिर से, के प्रति । निवेदयिष्यतः = विज्ञापयिष्यतः कथयिष्यतः; विवेदन करते हुए, बतलाते हुए । तस्य = वनेचरस्य किरातस्य गुप्तचरस्य, उस गुप्तचर किरात का । मनः = चित्तं, मन । न = नहि; नहीं । विव्यथे = व्यथितं पीडितम् अप्रियसत्यभाषणेन भयान्वितं चचाल; व्यथित, दुःखी, अप्रिय सत्यभाषण से भयभीत,

चञ्चल हुआ। हि = यतः यस्मात्कारणात्; क्योंकि। हितैषिणः = स्वामिहितार्थिनः शुभेच्छवः प्रभूविजयाभिलाषिणः जनाः; अपने स्वामी के हित की कामना करने वाले, प्रभु के मंगल की अभिलाषा करने वाले मनुष्य। (कदापि = कभी भी)। मृषा = मिथ्याभूतम् असत्यम् अलीकं; मिथ्या, असत्य। प्रियं = मधुरं श्रुतिसुखदं मनोहर; मधुर, श्रुतिसुखद (वचः = वचनं; वचन, वाणी को)। प्रवक्तुं = निवेदयितुं कथयितुम् अभिधातुं; निवेदन करना, कहना। न = नहि; नहीं। इच्छन्ति = वाञ्छन्ति अभिलषन्ति; चाहते ॥२॥

संस्कृतव्याख्या—अत्र श्लोकेऽस्मिन् गुप्तचरस्य दूतस्य सद्गुणा निरूपिताः। ते च चतुर्विधाः 'अमौढ्यममान्द्यममृषाभाषित्वमभ्यूहकत्वं चेति'। राज्ञः स्वनीतिविषये साफल्यं तस्मिन्नेव समाश्रितमधिकरूपेण।

समयोचितविहितनमस्कारस्य शत्रुणा दुर्योधनेन पुरा द्यूतक्रीडाछलेन अधुना नयेन स्वायत्तीकृतां स्ववशे कृतां पृथिवीं वने निवसते राज्यभ्रष्टाय राज्ञे युधिष्ठिराय सत्यभूतं शत्रोरुत्कर्षं विज्ञापयिष्यतस्तस्य किरातस्य गुप्तचरस्य चित्तं किञ्चिन्मात्रमपि न व्यथितम् अभूत्। पुरतः एव कथमप्रीतिजनकं शत्रोरुत्कर्षं कथयिष्यामीति सत्यकथनेन तस्य मनो भयेन विचलितं नाभूत्। यतः स्वस्वामिहितार्थिनो जनाः चराः कदाप्यसत्यं किंतु श्रुतिसुखदं मधुरं वचनं कथायितुं नाभिलषन्ति अपितु सदैव सत्यं यथार्थमेव निवेदयन्ति प्रियं भवतु अप्रियं वा। स्वप्रभुमङ्गलसंपादनमेव भवति तेषां परमं प्रयोजनम्।

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में गुप्तचर दूत के सुन्दर गुणों का निरूपण किया गया है। उसमें चार गुण होते है—चतुरता-स्फूर्ति-सत्यवादिता-तर्क। स्वामी के हित का सम्पादन ही गुप्तचर का परम प्रयोजन है। अतः राजा की अपनी नीति में सफलता अधिकांशतः दूत के ऊपर आश्रित है।

समय के अनुकूल युधिष्ठिर को नमस्कार करने वाले अर्थात् उपचार से युक्त विनयशील तथा शत्रु राजा दुर्योधन द्वारा पहले द्यूतक्रीडारूप कपट द्वारा और पुनः सुन्दर नीति द्वारा अपने अधिकार में की गई पृथिवी के सम्बन्ध में वनवासी राजा युधिष्ठिर से सत्य समाचार बतलाते हुए उस गुप्तचर किरात का मन किञ्चिन्मात्र भी व्यथित अर्थात् शत्रु के उत्कर्ष का सामने ही सत्यरूप में

कथन करने पर भय से विचलित नहीं हुआ। क्योंकि अपने स्वामी के मंगल की अभिलाषा रखने वाले सेवक, गुप्तचर, दूत कभी भी असत्य किंतु कर्णो को मधुर लगने वाले वचन कहना नहीं चाहते अपितु सदैव यथार्थ सत्य कथन ही करते हैं, भले ही वह प्रिय हो अथवा अप्रिय। क्योंकि सभी प्रकार से अपनें स्वामी के हित की सिद्धि ही उनका परम प्रयोजन होता है।

टिप्पणी :

कृतप्रणामस्य = कृतः प्रणामः येन स कृतप्रणामः, तस्य। बहुव्रीहि।

कृतः √कृ + क्त भावे। प्रणामः = प्र + √नम् + घञ् भावे।

महीभुजे = महीं भुनक्तीति महीभुक्, तस्मै। महीभुक् = मही + √भुज् + क्विप् कर्तरि। 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' से चतुर्थी।

सपत्नेन = समाने वस्तुनि पततीति सपत्नः। स + √पत् + न। अथवा 'सपत्नीव सपत्नः'। सपत्नी + अ।

हितैषिणः = हितम् इच्छन्तीति। हित = √धा + क्त। हित + √इष् + णिनि ताच्छील्ये। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'।

जिताम् = √जि + क्त + टाप्, द्वितीया एक वचन।

निवेदयिष्यतः = नि + √विद् + णिच् + लुट् शतृ, षष्ठी एक वचन।

विव्यथे = √व्यथ् + लिट् लाकार, प्रथम पुरुष, एक वचन। 'व्यथ भयचलनयोः

प्रवक्तुम् = प्र + √वच् + तुमुन्।

इच्छन्ति = √इष् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

कोष :

मही = भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा।
धरा धरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः॥
सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा।
गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही—इत्यमरः

महीभुक = 'पार्थिवो भूपतिर्भूपो महीभुक् क्ष्मापतिर्नृपः'

सपत्नः = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः—इत्यमरः

मनः = चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः—इत्यमरः
प्रियम् = अभीष्टेऽभीप्सितं हृद्यं दयितं वल्लभं प्रियम्—इत्यमरः
मृषा = मृषा मिथ्या तु वितथे—इत्यमरः

सुक्तिः—'न हि प्रिय........हितैषिणः' नीतिविषयक सूक्ति ।

अलंकार—प्रथम चरण में 'महीं महीभुजे' में स्वरव्यञ्जनसमूह 'मही' की सकृत् एक बार स्वरूपतः तथा क्रमतः आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है—
वर्णसाम्यमनुप्रासः । छेकवृत्तिगतो द्विधा । सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः ।
पूर्वकथन की 'न हि प्रियं....हितैषिणः' द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अथवा कारण निरूपणपूर्वक समर्थन होने से काव्यलिंग अलंकार ।

छन्द—वंशस्थ ।



द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः ।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥३॥

घण्टापथ—द्विषामिति । स वनेचरो द्विषां शत्रूणाम् । कर्मणि षष्ठी । विघाताय विहन्तुमित्यर्थः । 'तुमर्थाच्च भाववचनाद्' इति चतुर्थी । 'भाववचनाच्च' इति तुमर्थे घञ् प्रत्ययः । अत्र तादर्थ्यमपि न दोषः । तथापि प्रयोगवैचित्र्यविशेषस्याप्यलङ्कारत्वादेवं व्याचक्षते । विधातुं व्यापारं कर्तुम् इच्छतः 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' । द्विषो विहन्तुमुद्युक्तज्ञानस्येत्यर्थः । अत एव भूभृतो युधिष्ठिरस्य । रहसि एकान्ते अनुज्ञाम् अधिगम्य । सुष्ठु भावः सौष्ठवं शब्दसामर्थ्यम् । सुष्ठुशब्दादव्ययादुद्गात्रादित्वादञ्प्रत्ययः । उदारस्य भावः औदार्यम् अर्थसम्पत्तिः । तयोर्द्वन्द्वः सौष्ठवौदार्ये । अत्रौदार्यशब्दस्याजाद्यन्तत्वेऽपि 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इत्यत्राल्पस्वरस्यापि हेतुशब्दस्य पूर्वनिपातमकुर्वता सूत्रकृतैव पूर्वनिपातस्यानित्यत्वज्ञापनान्न पूर्वनिपातः । उक्तं च काशिकायाम्—'अयमेव लक्षण-

हेत्वोरिति निर्देशः पूर्वनिपातव्यभिचारश्चिह्नमिति।' त एव विशेषः तयोर्वा विशेषः तेन शालते शोभत इति सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी ताम्। ताच्छील्ये णिनिः। विनिश्चितार्था विशेषतः प्रमाणतो निर्णीतार्थामिति वक्ष्यमाणश्यो वाचं वाक्यम्। आददे स्वीकृतवान् उवाचेत्यर्थः ॥३॥

अन्वयः—द्विषां विघायात विधातुम् इच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य रहसि स (वनेचरः गुप्तचरः) सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थाम् इति वाचम् आददे ॥३॥

शब्दार्थ—द्विषां = शत्रूणां दुर्योधनादिकौरवाणाम्; शत्रुओं के, दुर्योधन इत्यादि कौरवों के। विघाताय = विनाशाय उन्मूलनाय; विनाश के लिए। विधातुं = विधानम् उद्योगं व्यापारं कर्तुं, येन केनोपायेन शत्रोः संहरणं भवेद् इति रूपेण; विधान, उद्योग, व्यापार करने के लिए। इच्छतः = अभिलषतः अभिवाञ्छतः कामनां कुर्वतः, अभिलाषा, कामना करने वाले। भूभृतः = भूपतेः राज्ञो युधिष्ठिरस्य; भूपति राजा युधिष्ठिर की। अनुज्ञां = आज्ञाम् अनुमतिं कटुयथार्थकथनविषये स्वीकृतिं; कटु यथार्थ कथन के सम्बन्ध में अनुमति को। अधिगम्य = प्राप्य लब्ध्वा; प्राप्त करके। रहसि = एकान्ते; एकान्त में। सः = स वनेचरः ,गुप्तचरः; वह बनेचर दूत। सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं = शब्दार्थ-वैशिष्ठ्यशोभितां शब्दार्थगुणशोभितां शब्दसौन्दर्यार्थगाम्भीर्यरूपगुणाभ्याम् अतिशयेन शोभमानां, सुष्ठु भावः सौष्ठवं शब्दसौन्दर्यं शब्दसामर्थ्यम् उदारस्य भावः औदार्यम् अर्थगाम्भीर्यं, सौष्ठावञ्च औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये, ताभ्यां विशेषेणातिशयेन शालते शोभते तच्छीला, ताम्; सौष्ठव, शब्दसौन्दर्य, सामर्थ्य तथा औदार्य अर्थ की गरिमा से युक्त होने के कारण विशेष रूप से, सुशोभित, शब्द की सुन्दरता तथा अर्थ की गरिमारूपी गुणों से समन्वित। विनिश्चितार्था = सुस्पष्टार्थां, विशेषरूपेण प्रकाशितार्थां, प्रमाणतः निर्णीतार्थां निर्णीताभिप्रायां; प्रमाण-तर्क द्वारा निःसंदिग्ध यथार्थ अर्थ वाली; प्रामाणिक अर्थ वाली। इति = एवं रूपां, वक्ष्यमाणरूपां; इस प्रकार की आगे कही जाने वाली। वाचं = वाणीं गिरां वचनं; वाणी, वचनको। आददे = स्वीकृतवान् स्वीचकार उवाच जगाद, स्वीकार किया, बोला ॥३॥

संस्कृतव्याख्या—हस्तिनापुरतो निवृत्तो वनेचरो गुप्तचरोऽप्रियसत्यसंदेश-निवेदने स्वामिनः स्वीकृतिं प्राप्य त्रिविधगुणसमन्वितां वाणीं वक्तुं प्रचक्रमे ।

शत्रुणां दुर्योधनादिकौरवाणां विनाशाय उन्मूलनाय उद्योगं कर्तुमभिलषतो भूपतेर्युधिष्ठिरस्य अप्रिययथार्थकथनविषयेऽनुमतिं प्राप्य एकान्ते तं प्रति स किरातो गुप्तचरः शब्दसौन्दर्यार्थगाम्भीर्यरूपगुणाभ्याम् अतिशयेन शोभमानां प्रमाणतः निर्णीतार्थां सन्देहरहिताम् एवं रूपां वक्ष्यमाणां वाणीं स्वीचकार प्रवक्तुमारभे । अस्य गुप्तचरस्य वाणी त्रिविधगुणसमन्विताऽऽसीत् शब्दसुषमामयी अर्थगरिमायुता प्रामाणिकी ।। ३ ।।

हिन्दी व्याख्या—हस्तिनापुर से लौटे हुए गुप्तचर ने अप्रिय सत्य संदेश के निवेदन के विषय में स्वामी युधिष्ठिर की स्वीकृति प्राप्त करके त्रिविध गुण से युक्त वाणी बोलना प्रारम्भ किया—

शत्रु दुर्योधन इत्यादि कौरवों के विनाश के लिए उद्योग करने की अभिलाषा वाले राजा युधिष्ठिर की अनुमति प्राप्त करके एकान्त में उस गुप्तचर किरात ने शब्द की सुन्दरता तथा अर्थ की गरिमारूपी गुणों से युक्त होने के कारण विशेष रूप से सुशोभित तथा प्रामाणिक अर्थ वाली इस प्रकार की आगे कही जाने वाली वाणी को बोलना प्रारम्भ किया । गुप्तचर की वाणी त्रिविध विशेषताओं से समन्वित थी—

१. सुन्दर उपयुक्त शब्द जो सरलतापूर्वक ग्राह्य हों ।
२. अर्थ की गरिमा अर्थात् अनावश्यक शब्दों का अभाव ।
३. प्रामाणिक सन्देहरहित कथन !

टिप्पणी :

द्विषाम् = द्विषन्ति इति द्विषः; तेषाम् । √द्विष् + क्विप् कर्तरि = द्विट् ।

विघाताय = वि + √हन् + घञ् भावे = विघातः; तस्मै । 'भाववचनाच्च' सूत्र से तुमुन् के अर्थ में घञ् तथा 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति ।

अनुज्ञाम् = अनु + √ज्ञा + अङ् भाववाचक । द्वितीया एकवचन ।

भूभृतः = भुवं बिभर्ति इति भूभृत, तस्य । भूभृत = भू + √भृ + क्विप् कर्तरि ।
सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनम् = सुष्ठु भावः सौष्ठवम् । उदारस्य भावः औदार्यम् । सौष्ठावञ्च औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये । इतरेतरद्वन्द्व । तयोः विशेषः, सौष्ठवौदार्यविशेषः । षष्ठी तत्पुरुष । सौष्ठवौदार्यविशेषण शालते इति सौष्ठवौदार्यविमेषशालिनी; ताम् । सौष्ठवं = सुष्ठु (अव्यय) + अञ् भावे । 'उद्गात्रादित्वाद्' । औदार्यम् = उदार + ष्यञ् भावे ।
विशेषः = वि + √शिष् + घञ् भावे ।
शालिनीम् = √शाल् + णिनि कर्तरि (ताच्छील्ये, + ङीप् स्त्री ।
विनिश्चितार्थाम् = विशेषेण निश्चितः विनिश्चितः । प्रादितत्पुरुष । विनिश्चितः अर्थः यस्याः सा, विनिश्चितार्था; ताम् । बहुव्रीहि ।
विधातुम् = वि + √धा + तुमुन् भावे । 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' ।
इच्छतः = √इष् + लट् शतृ । षष्ठी एक वचन ।
अधिगम्य = अधि + √गम् + क्त्वा — ल्यप् ।
आददे = आ + √दा + लिट् लकार, प्रथम पुरुष एक वचन ।
कोष :
द्विट् = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः ।
द्विड्विपक्षाहितामित्रदस्युशात्रवशत्रवः ॥ इत्यवरः
भूभृत् = भूमृद् भूमिधरे नृपे मूर्धाभिषिक्ते भूपेऽपि—इत्यमरः ।
रहः = विविक्तविजनच्छन्ननिःशलाकाः तथा रहः—इत्यमरः
वाक् = ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग् वाणी सरस्वती ।
व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः ॥ —इत्यमरः
अलंकार : 'व' तथा 'त' की आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास ।
साभिप्राय विशेषण के प्रयोग से परकिर । अतः
काव्यलिङ्ग अनुप्राणित परिकर अलंकार ।

छन्द : वंशस्थ

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥ ४ ॥

घण्टापथ—क्रियास्विति । हे नृप ! क्रियासु कृत्यवस्तुषु । युक्तैः नियुक्तैः । अनुजीविभिः भृत्यैः । चारादिभिरित्यर्थः । चरन्तीति चराः । पचाद्यच् । त एव चाराः । चरेः पचाद्यजन्तात्प्रज्ञादित्वादण्प्रत्ययः स्वार्थे । त एव चक्षुर्येषा ते चारचक्षुषः । 'स्वपरमण्डले कार्याकार्यावलोकने चाराश्चक्षूंषि क्षितिपतीनम्' इति नीतिवाक्यामृते । प्रभवो निग्रहानुग्रहसमर्थाः स्वामिनो न वञ्चनीयाः न प्रतारणीयाः । सत्यमेव वक्तव्या इत्यर्थः । चारापचारे चक्षुरपचारवद्राज्ञां पदे पदे निपात इति भावः । अतोऽप्रतार्यत्वाद्धेतोः । असाधु अप्रियं साधु प्रियं वा । मदुक्तमिति शेषः । क्षन्तुं सोढुम् अर्हसि । कुतः । हितं पथ्यं मनोहारि प्रियं च वचो दुर्लभम् । अतो मद्वचोऽपि हितत्वादप्रियमपि क्षन्तव्यमित्यर्थः ॥४॥

अन्वयः—हे नृप ! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वञ्चनीयाः । अतः असाधु वा साधु (मम वचनं भवेत्) (भवान्) क्षन्तुम् अर्हसि । (यतः) हितं च मनोहारि वचः (लोके) दुर्लभं (भवति) ॥४॥

शब्दार्थ—हे नृप ! = भो राजन् युधिष्ठिर ! हे राजा युधिष्ठिर ! क्रियासु = कार्येषु कर्त्तव्यविषयेषु संपादनीयेषु तत्तत्कृत्यवस्तुषु, कार्यो में; संपादन योग्य उन उन कर्त्तव्यों में । युक्तैः = नियुक्तैः संलग्नैः संयोजितैः; लगाए गए, नियुक्त किए गए । अनुजीविभिः = अनुचरैः भृत्यैः सेवकैः दूतैः, अनुचरों, भृत्यों, सेवकों, दूतों द्वारा । चारचक्षुषः = दूतनेत्राः गूढचरनेत्राः गुप्तचरनयनाः, चरन्तीति चराः त एव चाराः गूढपुरुषाः गुप्तचराः चक्षूंषि नेत्राणि येषां, ते, गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले, गुप्तचर हो जिनके नेत्र हैं । प्रभवः = स्वामिनः राजानः निग्रहानुग्रहसमर्थाः, स्वामी, राजा लोग । न = नहि, नही । वञ्चनीयाः = प्रतारणीयाः स्तुत्यादिभिः मिथ्याभूतैः कपटवचनैः; मधुर मिथ्या प्रशंसात्मक कपट वचनों द्वारा प्रतारित; छलने, ठगने योग्य । अतः = अस्मात्कारणाद् दूतकर्त्तव्यत्वात्, इसलिए, गुप्तचर दूत का कर्त्तव्य होने के कारण । असाधु = अशोभनम् अप्रियम्, अनुपयुक्त, अप्रिय, कटु । वा = अथवा । साधु = शोभनं प्रियं मधुरं मनोहरं; सुन्दर, प्रिय, मधुर, मनोहर । (मम वचनं भवेत् - शत्रोरुत्कर्षस्य यथार्थकथनं भवेत्, शत्रु के उत्कर्ष का यथार्थ कथन होवे) । क्षन्तुं = सोढुं क्षमां कर्तुं, सहन करने, क्षमा करने के लिए । अर्हसि = त्वं योग्योऽसि समर्थोऽसि, आप योग्य; समर्थ है ।

(यतः = क्योंकि)। हितं = हितकरं मंगलप्रदं भाविकल्याणकरं परिणामिसुखप्रदं शुभं पथ्यं, हितकर, भविष्य में, परिणाम में कल्याण करनेवाला। च = और साथ ही। मनोहारि = मनोहरं मधुरं सद्यः प्रियं, मनोहर, मधुर, तुरन्त ही प्रिय लगने वाला। वचः = वचनं कथनं, वचन। (लोके = संसारे, संसार में)। दुर्लभं = अतिकठिनं दुष्प्रापं दुष्प्रयोज्यं दुःखेन लभ्यं, कठिनता से मिलने वाला, प्रयोग किया जाने वाला। (भवति = होताहै) ॥४॥

संस्कृतव्याख्या—शत्रोरुत्कर्षस्य कटुसत्यनिवेदनात्पूर्वं स गुप्तचरः प्रथमं तावत् स्वामिनं युधिष्ठिरं क्षमां याचते। अत्र गुप्तचरः किरातः तं संबोधयन् कथयति—

भो राजन् युधिष्ठिर ! संपादनीयेषु तत्तत्कर्त्तव्यविषयेषु नियुक्तैः संयोजितैरनुचरैर्गुप्तचरैः गुप्तचरनयनाः स्वामिनः राजानः कदापि न प्रतारणीयाः अर्थात् सत्यमूतमर्थं निगूह्या मिथ्याभूतैः कपटवचनैः मधुरस्तुतिभिः सेवका दूताः स्वप्रभूणां प्रवञ्चनं कदापि मा कुर्युः। अस्मात्कारणाद् गुप्तचरस्य कर्त्तव्यत्वात् शत्रोर्दुर्योधनस्य समृद्धिनिरूपणे मम सत्यभूतं वचनम् अप्रियं भवतु प्रियं वा, त्वं तु सोढुमर्हसि। अप्रियसत्यनिवेदनकारणाद् अहं क्षन्तव्यो भवद्भिः। यतः परिणामिसुखकरं मंगलप्रदं तथैव सद्यो मनोहरं मधुरं वचनं लोकेऽस्मिन् दुःखेन लभ्यं दुष्प्रयोज्यं भवति ॥३॥

हिन्दी व्याख्या :—वह गुप्तचर शत्रु दुर्योधन के कटुसत्य रूप उत्कर्ष का निवेदन करने से पहले राजा युधिष्ठिर से क्षमा याचना करता है। राजा युधिष्ठिर को संबाधित करते हुए वह कहता है—

हे राजन् युधिष्ठिर ! सम्पादन योग्य कार्यों में नियुक्त किए गए अनुचरों, गुप्तचरों के द्वारा गुप्तचररूपी नेत्रों वाले स्वामी लोग, राजा लोग प्रतारित, ठगे नहीं जाने चाहिए, अर्थात् सत्यभूत अर्थ को छिपाकर मिथ्या स्तुति, प्रशंसा के द्वारा गुप्तचरों को अपने राजा को कभी भी ठगना नहीं चाहिए। इसलिए (दूत का ऐसा कर्त्तव्य होने के कारण) शत्रु की समृद्धि का निरूपण करने वाला ऐसा वचन अप्रिय हो अथवा प्रिय, आप क्षमा करने योग्य हैं अर्थात् अप्रिय सत्य कथन के लिए मुझे आप क्षमा करें। क्योंकि परिणाम में कल्याण करने वाला

तथा तुरन्त ही प्रिय मधुर लगने वाला वचन इस संसार में दुर्लभ होता है, कठिनाई से प्रयोग किया जाने वाला होता है ॥४॥

टिप्पणी :

चारचक्षुषः = चरन्तीति चराः, चराः एव चाराः, चाराः एव चक्षूंषि येषां ते
चारचक्षुषः। बहुव्रीहि।
चरः = √चर् + अच् कर्तरि, पचादित्वात्। चारः = चर + अण् स्वार्थे,
प्रज्ञादित्वात्।
चक्षुस = √चक्ष् + उस्।

प्रभवः = प्रभवन्तीति प्रभवः प्र + √भू + डु कर्तरि।
नृपः = नॄन् पाति रक्षतीति नृपः। नृ + √पा + क। 'आतोऽनुपसर्गे कः'
अनुजीविभिः = अनुजीवितुं शीलमेषामिति अनुजीविनः, तैः।
अनु + √जीव् + णिनि कर्तरि ताच्छील्ये।
'कृत्यानां कर्तरि वा' सूत्र से अनुक्त कर्ता में तृतीया।
मनोहारि = मनो हर्तुं शीलमस्येति। उपपद तत्पुरुष। नपुंसक, प्रथमा, एक
वचन। मनस् + √हृ + णिनि कर्तरि ताच्छील्ये।
हितम् = √धा + क्त।
दुर्लभम् = दुःखेन लभ्यते इति। उपपद तत्पुरुष। दुर् + √लभ् + खल् कर्मणि।
क्रिया = √कृ + श भावे + टाप्।
युक्तैः = √युज् + क्त, तृतीया बहुवचन।
वञ्चनीयाः = √वञ्च् + णिच् + अनीयर् कर्मणि।
अर्हसि = √अर्ह् + लट् मध्यम पुरुष, एक वचन।
क्षन्तुम = √क्षम् + तुमुन्।

कोषः :

नृपः = राजा राट्पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः।
राजा तु प्रणताशेषसामन्तः स्यादधीश्वरः।
चक्रवर्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो मण्डलेश्वरः ॥ इत्यमरः

प्रभुः = अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः—इत्यमर.
अनुजीविन् = सेवकार्थ्यनुजीविनः—इत्यमरः
चारः = 'चारश्च गूढपुरुषः' इति ।
सूक्ति = 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' उपदेशात्मक सूक्ति ।
अलंकार : पूर्वकथन का कारण निर्देशपूर्वक समर्थन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार ।
छन्द : वंशस्थ ।

●

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ॥५॥

घण्टापथ—स इति । यः सखा अमात्यादिः । अधिपं स्वामिनम् । साधु हितम् । न शास्ति नोपदिशति । 'ब्रुविशासि' इत्यादिना शासेर्दुहादिपाठाद् द्विकर्मकत्वम् । स हितानुपदेष्टा । कुत्सितः सखा किंसखा दुर्मन्त्रीत्यर्थः । 'किमः क्षेपे' इति समासान्तप्रतिषेधः । तथा यः प्रभुर्निग्रहानुग्रहसमर्थः स्वामी । हिताद् आप्तजनाद्धितोपदेष्टुः सकाशात् । 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानात् पञ्चमी । न संश्रृणुते न श्रृणोति हितमिति शेषः । 'समो गम्यृच्छि' इत्यादिना सम्पूर्वाच्छृणोतेरकर्मकादात्मनेपदम् । अकर्मकत्वं वैवक्षिकम् । स हितमश्रोता प्रभुः किम्प्रभुः कुत्सितस्वामी । पूर्ववत् समासः । सर्वथा सचिवेन वक्तव्यं श्रोतव्यं च स्वामिना । एवं च राजमन्त्रिणोरैकमत्यं स्यादित्यर्थः । ऐकमत्यस्य फलमाह—सदेति । हि यस्मात् । नृपेषु स्वामिषु । अमा सह भवा अमात्यास्तेषु अमात्येषु च । 'अव्ययात्यप्' । अनुकूलेषु परस्परानुरक्तेषु सत्सु । सर्वसम्पदः सदा रतिम् अनुरागम् । कुर्वते कुर्वन्ति । न जातु जहतीत्यर्थः । अतो मया वक्तव्यं त्वया च श्रोतव्यमिति भावः । अत्रैवं राजमन्त्रिणोर्हितानुपदेशतदश्रवणनिन्दासामर्थ्यसिद्धेरैकमत्यलक्षणकारणस्य निर्दिष्टस्य सर्वसम्पत्सिद्धिरूपकार्येण कारणसर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ! तदुक्तम्—"सामान्यविशेषकार्यकारणभावाभ्यां निर्दिष्टप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यासः" इति ॥५॥

अन्वयः—यः अधिपं साधु न शास्ति सः किंसखा । (एवमेव) यः हितात् (सखातः अमात्यतः) न संश्रृणुते सः किंप्रभुः । हि नृपेषु च अमात्येषु अनुकूलेषु (सत्सु) सर्वसंपदाः सदा रतिं कुर्वते ॥५॥

शब्दार्थ :—यः = सखा सुहृत् मित्रं सचिवादिः; जो मित्र, सचिव इत्यादि। अधिपं = अधिपतिं स्वस्वामिनं राजानं; अधिपति, स्वामी, राजा को। साधु = संयग् रूपेण, हितकरं परिणामिकल्याणप्रदं, अच्छी तरह, परिणाम में कल्याण करने वाला। न = नहि; नहीं। शास्ति = उपदिशति कथयति, उपदेश देता है, बतलाता है। सः = हितस्य अनुपदेष्टा असम्यगुपदेष्टा, मङ्गुलमार्गस्य अदर्शकः, हित का उपदेश न देने वाला, मांगलिक मार्ग को न बतलाने वाला। किंसखा = कुत्सितः सखा कुत्सितं मित्रं दुर्मन्त्री, कुत्सित, निन्द्य मित्र, सचिव है। (एवमेव = इसी प्रकार)। यः = स्वामी राजा प्रभुः; जो स्वामी, राजा। हितात् = हितोपदेष्टुः हितोपदेशकात् जनात् मित्रात् सचिवात्; हितैषी, हित का उपदेश, कथन करने वाले मित्र, मन्त्री से। न संश्रृणुते = सम्यग् रूपेग न श्रृणोति, हितकरं जनकं वचनं नाकर्णयति अपितु उपेक्षां करोति; कल्याण करने वाले वचन को नहीं सुनता, अपितु उपेक्षा करता है। सः = स स्वामी, राजा हितवचनश्रवणविमुखोऽधिपतिः; वह स्वामी, राजा, हितकारी वचन न सुनने वाला अधिपति। किंप्रभुः = कुत्सितः प्रभुः कुत्सितः स्वामी निन्दितराजः; कुत्सित, निन्द्य स्वामी, राजा है। हि = यतः यस्मात्कारणात्; क्योंकि। नृपेषु = स्वामिषु क्षितिपतिषु राजसु; स्वामी, राजा के। च = और। अमात्येषु = मन्त्रिषु सचिवेषु; मन्त्री, सचिवों के। अनुकूलेषु = परस्परमनुरागयुक्तेपु अन्योन्यानुरक्तेषु सत्सु समानचित्तेषु; परस्पर अनुराग युक्त, एक मत, समानविचार वाला होने पर। सर्वसंपदः = सकल-सम्पत्तयः सभी संपत्तियाँ। सदा = सर्वदा सदैव निरन्तरं सततं, सदैव, निरंतर रूप से। रतिं = प्रीतिम् अनुरागं, प्रीति अनुराग। कुर्वते = कुर्वन्ति, विदधति; करती हैं। राजलक्ष्मीः सदैव समृद्धिं गच्छति तथा तं राजानं कदापि न जहाति। अतः मया गुप्तचरेण यत्किंचिदपि अप्रियं सत्यं वक्तव्यमस्ति तद् भवद्भिः श्रोतव्यम् ॥ ५ ॥

संस्कृतव्याख्या—राज्यस्य स्थिरीकरणार्थं समृद्धयर्थं च नृपेषु सचिवेषु मतैक्यमत्यावश्यकं वर्तते इति प्रतिपादितमत्र।

यः सखा सचिवादिः स्वस्वामिनम् अधिपतिं राजानं सम्यग् रूपेण हितजनकं कल्याणकरं वचनं नोपदिशति कथयति निश्चयरूपेण मङ्गुलमार्गस्य अनुपदेष्टा

स कुत्सितः सखा सचिवोऽस्ति, नासौ सुहृद् । एवं रूपेण हितोपदेष्टुः हितोपदेशकाज्जनात् मित्रात् सचिवाद् यः स्वामी राजा हितकरं वचनं न शृणोति तस्योपेक्षां करोति निश्चयेन स कुत्सितः स्वामी निन्दितराजः । यतः स्वामिषु राजसु सचिवेषु च परस्परमनुरागयुक्तेषु सत्सु सकलाः सम्पत्तयः सततं निरन्तर-मनुरागं कुर्वन्ति अर्थाद् उभयोः समनस्कत्वात् मतैक्यत्वाद् राजलक्ष्मीः सततं समृद्धिं गच्छति तं राजानं कदापि न जहाति । अतो मया गुप्तचरेण शत्रोर्दुर्योधनस्य प्रकर्षप्रतिपादने यत्किंचिदप्यप्रियं सत्यं वक्तव्यमस्ति तत्सर्वं भवद्भिः श्रोतव्यमेव अमर्षपूर्वकम् ॥५॥

हिन्दी व्याख्या—राज्य की स्थिरता तथा समृद्धि के लिए राजा तथा सचिव में परस्पर विचार की अनुकूलता अत्यन्त आवश्यक है, इसी तथ्य का प्रतिपादन प्रस्तुत श्लोक में किया गया है ।

जो मित्र, मन्त्री अपने स्वामी, राजा को अच्छी तरह कल्याणकारी उपदेश नहीं देता, हिचकारी वचन नहीं कहता, हितकारी बात न कहने वाला वह निन्दनीय मित्र, मन्त्री है । इसी प्रकार हितैषी, कल्याणकारी बात कहने वाले मित्र, मन्त्री से जो हितप्रद वचन नहीं सुनता, वह निन्दनीय स्वामी, राजा है । क्योंकि राजाओं तथा मन्त्रियों के परस्पर अनुकूल, अनुरागयुक्त, समान विचार वाला होने पर ही समस्त सम्पत्तियाँ राजा के प्रति सदैव अनुराग करती हैं अर्थात् राजलक्ष्मी निरन्तर समृद्धि को प्राप्त करती जाती है, कभी भी उस राजा का परित्याग नहीं करती ।

टिप्पणी :

किंसखा = कुत्सितः सखा किंसखा । कर्मधारय ।

'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच् प्रत्यय । किंतु 'किमः क्षेपे' सूत्र से टच् का बाध ।

किंप्रभुः = कुत्सितः प्रभुः किंप्रभुः । कर्मधारय ।

अधिपम् = अधिपातीति अधिपः, तम् ।

अधि + √पा + क कर्तरि । 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से क प्रत्यय ।

द्विकर्मक √शास् धातु के योग में द्वितीया ।

हितात् = हितमस्ति अस्येति हितः, तस्मात् । 'आख्यातोपयोगे' सूत्र से पञ्चमी ।

√धा + क्त भावे नपुंसके = हितम् ।

हित + अच् मत्वर्थीय = हितः । 'अर्श आदित्वात्' से अच् प्रत्यय ।

अनुकूलेषु = कूलम् अनुगताः अनुकूलाः, तेषु । प्रादितत्पुरुष ।

अमात्येषु = अमा सह भवा अमात्याः, तेषु । अमा + त्यप् ।

'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव'

नृपेष्वमात्येषु = 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी ।

सर्वसम्पदः = सर्वाः सम्पदः सर्वसम्पदः । कर्मधारय ।

सम्पद् = सम् + √पद् + क्विप् भावे ।

शास्ति = √शास् + लट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन, द्विकर्मक धातु ।

संश्रृणुते = सम् + √श्रू + लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन, सम् पूर्वक होने से अकर्मक ।

रतिम् = √रम् + क्तिन् भावे = रतिः, ताम् ।

कुर्वते = √कृ + लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन ।

कोष :

सखा = वयस्यः स्निग्धः सवया अथ मित्रं सखा सुहृत्—इत्यमरः

किम् = किं पृच्छायां जुगुप्सने—इत्यमरः

साधु = सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्—इत्यमरः

हि = हि हेताववधारणे—इत्यमरः

सम्पद् = अथ सम्पदि सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च—इत्यमरः

अधिपः = अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः—इत्यमरः

विशेष : राजनीतिविषयक तथा लोकोपयोगी कथन ।

अलंकार : कार्य से कारण का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

कतिपय आलंकारिक हेतुकथनपूर्वक समर्थन होने से काव्यलिङ्ग ।

छन्द : वंशस्थ

●

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ॥६॥

घण्टापथ—निसर्गेति। निसर्गदुर्बोधं स्वभावदुर्ग्रहम्। 'ईषद्दुः' इत्यादिना खल्प्रत्ययः। भूपतीनां चरितं चरित्रं क्व। अबोधविक्लवा अज्ञानोपहता जन्तवः। मादृशाः पामरजना इत्यर्थः। क्व। नोभयं सङ्घटत इत्यर्थः। तथापि निगूढतत्त्वं संवृतयाथार्थ्यं विद्विषां नयवर्त्म षाड्गुण्यप्रयोगः। 'सन्धिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च।' द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणा नीतिवेदिनाम्'॥ इत्यादि रूपो यन्मया अवेदि ज्ञातमिति यावत्। विदेः कर्मणि लुङ्। अयम् इदं वेदनमित्यर्थः। विधेयप्राधान्यात् पुंलिंगनिर्देशः। तवानुभावः सामर्थ्यम्। अनुगतो भावः अनुभावः इति घञन्तेन प्रादिसमासः। न तूपसृष्टाद् घञ् प्रत्ययः। 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' भवतेर्धातोर्घञ् विधानात्। अत एव काशिकायाम् – 'कथं प्रभावो राज्ञां प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमास' इति। दोषपरिहारौ सम्यग् ज्ञात्वैव विज्ञापयामि। न तु वृथा कर्णकठोरं प्रलपामीत्याशयः ॥६॥

अन्वय—निसर्गदुर्बोधम् भूपतीनाम् चरितम् क्व। (अन्यत्र) अबोध-विक्लवाः (मादृशाः) जन्तवः क्व। (तथापि) मया विद्विषाम् निगूढतत्त्वम् नयवर्त्म यत् अवेदि (तत्) अयम् तव अनुभावः ॥६॥

शब्दार्थ—निसर्गदुर्बोधं = स्वभावदुर्विज्ञेयं प्रकृतिदुर्ज्ञेयं स्वभावादेव दुरधिगमं ज्ञातुमशक्यं न सुबोधम् अत्यन्तगूढं रहस्यात्मकं; स्वभाव से ही दुर्बोध, जानने में कठिन, अत्यन्त गूढ़, रहस्यात्मक। भूपतीनां = भूभृतां राज्ञां; राजाओं का। चरितं = चरित्रं राज्यशासनरूपं कृत्यं माहात्म्यं; चरित्र, राज्यशासनसंबन्धी नीति, व्यवहार। क्व = कुत्र वर्तते, कहाँ पर। (अन्यत्र = इसके विपरीत)। अबोधविक्लवाः = अज्ञानोपहताः अज्ञानपूर्णाः दुर्बोधजडाः, अज्ञान से नष्ट हुई बुद्धि वाले, अज्ञानपूर्ण। (मादृशाः = मुझे जैसे)। जन्तवः = जीवाः प्राणिनः अतितुच्छपामरजनाः; अति सामान्य मनुष्य। क्व = कुत्र वर्तन्ते, उभयोः महदन्तरं महान् भेदः, कहाँ पर हैं, दोनों में बहुत अन्तर है अर्थात् स्वभावतः अतीवदुर्बोधं रहस्यात्मकं राज्ञां चरितं मादृशैः अज्ञानोपहतैर्जनैः ज्ञातुं न शक्यम्। (तथापि = फिर भी)। मया = गुप्तचरेण किरातेन; मुझ गुप्तचर किरात द्वारा। विद्विषां =

शत्रूणां दुर्योधनादिकौरवाणां; शत्रुओं का, दुर्योधन इत्यादि कौरवों का। निगूढतत्त्वं = अतिगुप्तसारं संवृतयाथार्थ्यम् अत्यन्तरहस्यात्मकं; अत्यन्त रहस्यात्मक, बहुत ही गुप्त तत्त्व वाला। नयवर्त्म = राजनीतिपथः राजनीतिमार्गं संधिविग्रहादिप्रयोगः; राजनीति का मार्ग। राजनीति के षड्विधगुण—

संधिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च।
द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणा नीतिवेदिनाम्।

यत् = यत्किञ्चित्; जो कुछ। अवेदि = विज्ञातं, मेरे द्वारा जाना गया। (तत् = तत्सर्वं, वह सब कुछ)। अयं = यह। तव = तव राज्ञः युधिष्ठिरस्य; आप राज युधिष्ठिर का। अनुभावः = प्रभावः प्रतापः सामर्थ्यं; प्रभाव, प्रताप, महिमा, सामर्थ्य है ॥६॥

संस्कृतव्याख्या—भूपतीनां चरित्रस्य दुर्बोधत्वं तथा गुप्तचरस्य वनेचरस्य विनयशीलत्वं निरभिमानित्वं निरूपितमत्र।

क्व स्वभावादेव दुर्बोधम् अत्यन्तगूढं चरित्रं राज्यशासनरूपं कृत्यं महीपतीनाम्। अन्यत्र अज्ञानोपहता अज्ञानपूर्णा मादृशाः किरातसदृशाः सामान्यजनाः अर्थात् उभयोर्विद्यते महान् भेदः। स्वभावतोऽतीवदुर्बोधं रहस्यात्मकं राज्ञां चरित्रं अज्ञानोपहतैः ज्ञानगन्धविरहितैर्मादृशैर्जनैः ज्ञातुं न शक्यम्। तथापि मया गुप्तचरेण वनेचरेण शत्रूणां दर्योधनादिकौरवाणां अत्यन्तं रहस्यात्मकं गुप्तस्वरूपं राजनीतिमार्गं यत्किंचिदपि विज्ञातं तत्सर्वं तव राज्ञो युधिष्ठिरस्य प्रभावः प्रतापः। नयवर्त्मनः राजनीतेः षड्विधगुणा एवं—

संधिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च।
द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणा नीतिवेदिनाम्।

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में राजाओं के चरित्र की दुर्बोधता तथा गुप्तचर वनेचर की विनयशीलता व निरभिमानिता का निरूपण किया गया है।

स्वभाव से ही अत्यन्त दुर्बोध राजाओं का चरित्र कहाँ पर और इसके सर्वथा विपरीत कहाँ पर अज्ञान से नष्ट हुई बुद्धि वाले हम किरात जैसे अति तुच्छ मनुष्य अर्थात् दोनों में बहुत ही अधिक अन्तर है। यद्यपि मुझ जैसे

अज्ञानी वन में घूमने वाले मनुष्य के द्वारा राजाओं के अत्यन्त रहस्यात्मक चरित्र, व्यवहार को जानना सम्भव नहीं है, तथापि मुझ गुप्तचर वनेचर द्वारा शत्रु दुर्योधन इत्यादि कौरवों के बहुत ही गूढ राजनीति के मार्ग को जो कुछ भी जान लिया गया है, वह सब आप राजा युधिष्ठिर का ही प्रभाव है। राजनीति के षड्विधगुण इस प्रकार हैं—

संधि, विग्रह; यान, संस्थाप्य, आसन, द्वैधीभाव।

टिप्पणी :

निसर्गदुर्बोधम् = निसृज्यते इति निसर्गः। दुःखेन बुध्यते इति दुर्बोधम्। निसर्गेण दुर्बोधम् निसर्गदुर्बोधम्। तृतीया तत्पुरुष अथवा सुप्सुपा।

निसर्गः = नि + √सृज् + घञ् भावे।

दुर्बोधम् = दुर् + √बुध + खल् कर्मणि।

'ईषद् दुःसुषु कृच्छार्थेषु खल्' सूत्र से खल् प्रत्यय।

अबोधविक्लवाः = न बोधः अबोधः। नञ् तत्पुरुष। विगतः क्लवः अस्येति विक्लवः। बहुव्रीहि।

अबोधेन विक्लवाः अबोधविक्लवाः। तृतीया तत्पुरुष अथवा सुप्सुपा।

बोधः = √बुध् + घञ्। विक्लवः = वि + √क्लव् + अच्।

भूपतीनाम् = भुवः पतिः भूपतिः, तेषाम्। षष्ठी तत्पुरुष।

भूपतिः = भू + √पा + इति कर्तरि।

अनुभावः = अनुगतः भावः अनुभावः। प्रादि तत्पुरुष। अनु + √भू + घञ्।

निगूढतत्त्वम् = तस्य भावः तत्त्वम्। निश्चयेन गूढं तत्त्वं यस्य, तन्नि गूढतत्त्वम्। बहुव्रीहि।

निगूढम् = नि + √गुह् + क्त कर्मणि। तत्त्वम् = तत् + त्व।

नयवर्त्म = नीयतेऽनेनेति नयः।

वर्ततेऽनेन अस्मिन् वा इति वर्त्म। नयस्य वर्त्म नयवर्त्म। षष्ठी तत्पुरुष।

नयः = √नी + अच् बाहुलकात्। वर्त्म = √वृत् + मनिन्।

विद्विषाम् = विद्विषन्तीति विद्विषः, तेषाम्। वि + √द्विष् + क्विप् कर्तरि = विद्विट्। चरितम् = √चर् + क्त भावे।

अवेदि = √विद् + लुङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन, कर्मवाच्य ।

कोष :

निसर्गः = स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ वेपथुः—इत्यमरः

विक्लवः = विक्लवो विह्वलः स्यात्तु विवशोऽरिष्टदुष्टधीः—इत्यमरः

जन्तुः = प्राणी तु चेतनो जन्मो जन्तुजन्युः शरीरिणः—इत्यमरः

अनुभावः = अनुभावः प्रभावे च सतां च मतिनिश्चये—इत्यमरः

भूपतिः = पार्थिवो भूपतिर्भूपो महीभुक् क्ष्मापतिर्नृपः—इत्यमरः

द्विषद् = 'रिपौ वैरि सपत्नाऽरिद्विषद् द्वेषणदुर्हृदः' इति ।

वर्त्म = 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः' इति ।

अलङ्कारः—दो कथनों में अत्यन्त विषमता का निरूपण होने से विषमालंकार ।

छन्दः—वशस्थ

विशङ्कमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥७॥

घण्टापथ—विशङ्कमान इति । सुखेन युध्यते सुयोधनः । 'भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः' । नृपासनस्थः सिंहासनस्थोऽपि । वनमधिवसतीति तस्माद् वनाधिवासिनो वनस्थात् । राज्यभ्रष्टादपीत्यर्थः । भवतस्त्वत्तः पराभवं पराजयं विशङ्कमानः उत्प्रेक्षमाणः सन् । दुष्टमुदरमस्येति दुरोदरं द्यूतम् । पृषोदरादित्वात् साधुः । 'दुरोदरे द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम्' इत्यमरः । तस्य छद्मना मिषेण जितां छद्मजितां दुर्नयार्जितां जगतीं महीम् । 'जगती विष्टपे मह्यां वास्तुच्छन्दो विशेषयोः' इति वैजयन्ती । नयेन नीत्या जेतुं वशीकर्तुं समीहते व्याप्रियते । न तु शास्त इत्यर्थः । बलवत्स्वामिकमविशुद्धागमञ्च धनं भुञ्जानस्य कुतो मनसः समाधिरिति भावः । अत्र 'दुरोदरच्छद्मजिताम्' इति विशेषणद्वारेण-पदार्थस्य चतुर्थपादार्थं प्रति हेतुत्वेनोपन्यासाद् द्वितीयकाव्यलिङ्गमलङ्कारः । तदुक्तम्—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' ॥७॥

अन्वयः—सुयोधनः नृपासनस्थः अपि वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशङ्कमानः (पुरा) दुरोदरच्छद्मजितां जगतीं (अधुना) नयेन जेतुं समीहते ॥७॥

शब्दार्थः—सुयोधनः = धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठपुत्रः दुर्योधनः, धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन। नृपासनस्थः = राजसिंहासनारूढ़ः सन्, राजसिंहासन पर आरूढ़ होता हुआ, समस्त अधिकार, साधन सम्पन्न होता हुआ। अपि = भी। वनाधिवासिनः = वनौकसः अरण्यनिवासिनः विपिने विहरतः इतस्ततः राज्य-भ्रष्टत्वात् सकलसाधनहीनात्, वन में निवास करने वाले, राज्यभ्रष्ट होकर जंगल में इधर-उधर भटकने वाले, सभी साधनों से हीन। भवतः = भवतः राज्ञः युधिष्ठिरात्, आप राजा युधिष्ठिर से। पराभवं = पराजयं, पराजय की। विशङ्कमानः = आशङ्कमानः उत्प्रेक्षमाणः मन्यमानः सन्दिहानः भयमनुभवन्, शंका करता हुआ, भयभीत होता हुआ। (पुरा = पूर्व, पहले)। दुरोदरच्छद्मजितां = द्यूतछलेन प्राप्तां द्यूतकपटेन अन्यायेन अर्जिताम् अधिकृतां स्वायत्तीकृतां, द्यूत क्रीड़ा के कपट, छल से अपने वश में की गई, आधीन की गई। जगतीं = पृथिवीं महीं राज्यं; पृथिवी, राज्य को। (अधुना = अब)। नयेन = सुनीत्या न्यायेन नीतिमार्गेण राजधर्मेण प्रजापालनेन, सुन्दर नीति द्वारा, प्रजा पालन द्वारा। जेतुं = वशीकर्तुं स्थिरीकर्तुं, जीतने के लिए, सदा के लिए अपने वश में, अधि-कार में करने के लिए। समीहते = अभिलषति, इच्छति यतते, अभिलाषा करता है, प्रयास करता है ॥७॥

संस्कृतव्याख्या—द्यूतक्रीडाव्याजादधिगतराज्योऽपि दुर्योधनः वनवासिनः राज्यभ्रष्टाद् युधिष्टिरात् पराभवस्य भीत्या अधुना नीतिपूर्वकं प्रजारञ्जनाल्लो-कान् वशीकर्तुमभिलषतीति प्रतिपादितमत्र।

धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठपुत्रो दुर्योधनः राजसिंहासनारूढोऽपि समस्ताधिकार-सम्पन्नोऽपि वनवासिनः राज्यभ्रष्टत्वाद् इतस्ततो विपिने विहरतः सकलसाधन-हीनाद् भवतो युधिष्ठिरात् पराजयं सन्दिहानो मन्यमानः पुरा द्यूतछलेन प्राप्ताम् अन्यायेन अर्जितां पृथिवीं अधुना सुनीत्या प्रजापालनेन न्यायपूर्वकं प्रजानुरञ्ज-नाद् वशीकर्तुं अभिलषति वाञ्छति यतते ॥७॥

हिन्दी व्याख्या—द्यूतक्रीडा के छल से शासनाधिरूढ दुर्योधन राज्य से भ्रष्ट होकर जंगल में भटकने वाले युधिष्ठिर से पराजय की शंका करता हुआ सुन्दर नीति से सभी प्रजाजनों को अपने वश में करने की चेष्टा कर रहा है।

दुर्योधन राजसिंहासन पर आरूढ़ होता हुआ अर्थात् समस्त अधिकारों-साधनों से सम्पन्न होने पर भी वन में निवास करने वाले अर्थात् राज्य से भ्रष्ट होकर जंगल में इधर-उधर भटकने वाले सभी साधनों से हीन आप राजा युधिष्ठिर से अपने पराजय की आशंका करता हुआ पहले द्यूतक्रीडा के छल से अपने अधिकार में की गई पृथिवी को अब प्रजापालन इत्यादि सुन्दर नीति से सदैव के लिए अपने अपने वश मे करने के लिए साभिलाष प्रयास कर रहा है।

टिप्पणी :

नृपासनस्थः = नॄन् पातीति नृपः। उपपद तत्पुरुष। आस्यतेऽस्मिन्निति आसनम्। नृपस्य आसनं नृपासनम्। षष्ठी तत्पुरुष। नृपासने तिष्ठतीति नृपासनस्थः। उपपद तत्पुरुष। नृपः = नॄ + √पा + क। आसनम् = √आस् + ल्युट्। नृपासनस्थः = नृपासन + √स्था + क। 'सुपि स्थः' से 'क' प्रत्यय।

वनाधिवासिनः = वनम् अधिवसतीति वनाधिवासी, तस्मात्। उपपद तत्पुरुष।
वन + अधि + √वस् + णिनि कर्त्तरि।

दुरोदरच्छद्मजितां = दुष्टमुदरम् अस्येति दुरोदरम्। पृषोदरादित्वात् साधुः। दुरोदरमेव छद्म, दुरोदरछद्म। कर्मधारय। दुरोदरछद्मना जितामिति दुरोदरछद्मजिताम्। तृतीया तत्पुरुष।
०जितां = √जि + क्त टाप्। छद्म = √छद् + मनिन्।

सुयोधनः = सुखेन युध्यते इति सुयोधनः। सु + √युध् + युच् कर्त्तरि।
'भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज् वा'

पराभवम् = परा + √भू + अप् भावे।

विशङ्कमानः = वि + √शङ्क् + शानच्।

नयेन = √नी + अच् भावे।

जेतुम् = √जि + तुमुन्।

समीहते = सम् + √ईह्-लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

कोष :

पराभव: = 'पराभव: परिभव: परिभूति: पराजय:' इति ।
वनम् = 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमर: ।
दुरोदर: = 'दुरोदरे द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम्' इत्यमर: ।
जगती = 'त्रिष्वथो जगति लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमर: ।
छद्म = 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे' इत्यमर: ।
नय: = 'ओष: प्लोषे नयो न्याये' इत्यमर: ।

अलंकार :—पूर्वकथन का हेतुनिर्देशपूर्वक उत्तरकथन द्वारा समर्थन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार ।

छन्द :—वंशस्थ ।

तथापि जिह्म: स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यश: ।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभि: ॥८॥

घण्टापथ – तथापीति । तथापि साशङ्कोऽपि । जिह्मो वक्र: । वञ्चक इति यावत् । स दुर्योधनो भवज्जिगीषया गुणैर्भवन्तमाक्रमितुमिच्छयेत्यर्थ: । 'हेतौ' इति तृतिया गुणसम्पदा दानदाक्षिण्यादिगुणगरिम्णा करणेन । शुभ्रं यश: तनोति । स खलो गुणलोभनीयां त्वत्सम्पदमात्मसात्कर्तुं त्वत्तोऽपि गुणवत्तामात्मन: प्रकटयतीत्यर्थ: । नन्वेवं गुणिन: सतोऽपि सज्जनविरोधो महानस्त्यस्य दोष इत्याशङ्क्य सोऽपि सत्संसर्गालाभे नीचसङ्गमाद्वरमुत्कर्षावहत्वादित्याह—समिति । तथाहि भूतिं समुन्नयन् उत्कर्षमापादयन् । 'लट: शतृशानचौ' इत्यादिना शतृप्रत्यय: । पुनर्लङ्ग्रहणसामर्थ्यात् प्रथमासामानाधिकरण्यम् । महात्मभि: समं सहेत्यर्थ: । 'साकं सत्रा समं सह' इत्यमर: । अनार्यसङ्गमाद् दुर्जनसंसर्गात् । 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी । विरोधोऽपि वरं मनाक्प्रिय: । देवाद् वृते वर: श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबे मनाक् प्रिये' इत्यमर: । अत्र मैत्र्यपेक्षया मनाक्प्रियत्वं विरोधस्य । 'भूतिं समुन्नयन्' इत्यस्य पूर्ववाक्यान्वये समाप्तस्य वाक्यार्थस्य पुनरादानात् समाप्तपुनरात्ताख्यानदोषापत्ति: । तदुक्तं काव्यप्रकाशे 'समाप्तपुनरादानात् समाप्तपुनरात्तकम्' इति । न च वाक्यान्तरमेतत्, येनोक्तदोषपरिहार: स्यात् । अर्थान्तरन्यासालङ्कार: । स च भूति

समुन्नयनस्य पदार्थविशेषणद्वारा विरोधवत्त्वं प्रति हेतुत्वाभिधानरूपकाव्यलिङ्गानुप्राणित इति ॥८॥

अन्वय:—तथापि जिह्मः सः (दुर्योधनः) भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति। भूतिं समुन्नयन् महात्मभिः समं विरोधः अपि अनार्यसंगमात् वरम् ॥८॥

शब्दार्थ:—तथापि = साशङ्कोऽपि संदेहयुक्तोऽपि, ऐसा होने पर भी, पराजय की आशंका करता हुआ भी। जिह्मः = कुटिलः वक्रः वञ्चकः; कुटिल, वञ्चक। सः = स दुर्योधन, वह दुर्योधन। भवज्जिगीषया = स्वसद्गुणैः भवन्तं युधिष्ठिरं जेतुमिच्छया विजयेच्छया आक्रमितुमभिलाषयाः, अपने सद्गुणों से आप युधिष्ठिर को जीतने, अभिभूत करने की इच्छा से। गुणसम्पदा = दयादानदाक्षिण्यशीलशौचार्जवौदार्यादीनां गुणानां सम्पत्त्या, दया-दान-दाक्षिण्य-शील-शौच-ऋजुता—उदारता इत्यादि गुणों की सम्पत्ति से, प्रयोग से। शुभ्रं = स्वच्छं धवलं विमलं निर्मलं, स्वच्छ, धवल, दोषरहित। यशः = कीर्तिं, कीर्ति को। तनोति = विस्तारयति, फैलाता है, बढ़ाता है, भूतिं = विभूतिम् ऐश्वर्यं राजलक्ष्मीं समृद्धिं, ऐश्वर्य, समृद्धि को। समुन्नयन् = संवर्धयन् उत्कर्षम् आपादयन्, उत्कर्ष को प्राप्त कराता हुआ, समृद्धि को ले जाता हुआ, वृद्धि करता हुआ। महात्मभिः समं = सज्जनैः साधुभिः महापुरुषैः सह, सज्जनों, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ। विरोधः अपि = विग्रहोऽपि द्वेषोऽपि, विद्वेष, विरोध, शत्रुता होने पर भी। अनार्यसंगमात् = दुर्जनसंपर्कात् नीचजनसंसर्गात्, दुर्जन, नीच मनुष्य के संसर्ग, साथ की अपेक्षा तुलना में। वरं = ईषत्प्रियः मनाक् प्रियः श्रेष्ठो विद्यते मन्यते, कुछ उत्तम ही है ॥८॥

संस्कृतव्याख्या—प्रवञ्चकोऽपि स दुर्योधनः स्वशत्रुं जेतुं सद्गुणैः कीर्तिं तनोतीति प्रतिपादितमत्र।

संदेहयुक्तोऽपि अर्थाद् भवता पराजयं सन्दिहानोऽपि प्रवञ्चकः स दुर्योधनः स्वसद्गुणैः भवन्तं युधिष्ठिरं जेतुमिच्छया दयादानदक्षिण्यशीलशौचार्जवौदार्यादीनां सद्गुणानां सम्पत्त्या स्वकीयं धवलं यशो विस्तारयति। अतः ऐश्वर्यं संवर्धयन् महापुरुषैः सह विद्वेषोऽपि नीचजनसंसर्गाद् ईषत्प्रियो भवति ॥८॥

हिन्दी व्याख्या—प्रवञ्चक होने पर भी वह दुर्योधन अपने शत्रु को जीतने के लिए सुन्दर गुणों के द्वारा चारों तरफ कीर्ति का विस्तार कर रहा है, इस रूप में युधिष्ठिर से किरात निवेदन कर रहा है—

ऐसा होने पर भी अर्थात् आपसे पराजय की आशंका करता हुआ भी वह प्रवञ्चक दुर्योधन अपने सद्गुणों से आपको जीतने की अभिलाषा से दया-दान-दाक्षिण्य-शील-शौच-ऋजुता-उदारता इत्यादि सुन्दर गुणों की सम्पत्ति से अपने धवल यश का विस्तार कर रहा है। ऐश्वर्य की समृद्धि करता हुआ महापुरुषों के साथ विरोध भी दुष्ट जनों के साथ की अपेक्षा कुछ उत्तम ही है ॥८॥

टिप्पणी :

भवज्जिगीषया = जेतुमिच्छा जिगीषा। भवतः जिगीषा भवज्जिगीषा। षष्ठी तत्पुरुष। तया, हेतौ तृतीया। जिगीषा = √जि + सन् भावे अ + टाप्।

अनार्यसङ्गमात् = अर्यते गम्यते आचारपूतत्वादाश्रीयते, अर्तुं योग्यो वेति आर्यः। न आर्यः अनार्यः। नञ् तत्पुरुष। अनार्यस्य सङ्गमः इति अनार्यसङ्गमः, तस्मात्। षष्ठी तत्पुरुष।

आर्यः = √ऋ + ण्यत् कर्मणि। सङ्गमः = सम् + √गम् + अप् भावे।

गुणसम्पदा = गुणानां सम्पत् इति गुणसम्पत्, तया। षष्ठी तत्पुरुष।

सम्पत् = सम् + √पत् + क्विप्।

भूतिन् = √भू + क्तिन् भावे, भूतिः ताम्।

जिह्मः = जहाति सन्मार्गं हीयते वा। √हा + मन् उणादि।

विरोधः = वि + √रुध् + घञ् भावे।

महात्मभिः = महान् आत्मा येषां ते महात्मनः, तैः। बहुव्रीहि।

'सहयुक्तेऽप्रधाने' से सम् के योग में तृतीया।

समुन्नयन् = सम् + उत् + √नी + शतृ कर्त्तरि। 'लटः शतृशानचौ'

तनोति = √तन्—लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन।

कोष :

जिह्मः = जिह्मस्तु कुटिलेऽलसे—इत्यमरः

जिह्मस्तु कुटिले मन्दे इति हैमः

शुभ्रम् = शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्वेतपाण्डुराः—इत्यमरः
यशः = यशः कीर्तिः समज्ञा च—इत्यमरः
भूतिः = विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा—इत्यमरः
अनार्यः = नीचोऽनार्योऽकुलीनोऽपि शठो दुर्वृत्तः—इत्यमरः
आर्यः = महाकुलकुलीनार्यसभ्यशज्जनसाधवः—इत्यमरः
सङ्गमः = संसर्गः सङ्गमः सम्पर्क इति प्रोच्यते समः—इति ।
वरः = देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवे मनाक् प्रिये—इत्यमरः
मनाग् इष्टे वरं क्लीवं केचिदाहुस्तदव्ययम्—इति मेदिनी
विरोधः = विरोधो विग्रहो मतः इति ।
समम् = साकं सत्रा समं सह—इत्यमरः

अलंकारः—विशेष कथन का सामान्य कथन द्वारा पुष्टि तथा प्रथम कथन का कारणनिर्देशपूर्वक उत्तर कथन से समर्थन होने से काव्यलिङ्ग अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास ।

छन्दः—वंशस्थ

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना ।
विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥ ९ ॥

घण्टापथ—कृतेति । षण्णां वर्गः षड्वर्गः । अरीणामन्तः शत्रूणां कामक्रोधादीनां षड्वर्गोऽरिषड्वर्गः शिवभागवतवत्समासः । तस्य जयः कृतो येन तेन तथोक्तेन कृतारिषड्वर्गजयेन विनीतेनेत्यर्थः । विनीताधिकारं प्रजापालनमिति भावः । आगम्यरूपां पुरुषमात्रदुष्प्राप्याम् । मनोरिमां मानवीम् । मनूपदिष्टसदाचारक्षुण्णामित्यर्थः । पदवीं प्रजापालनपद्धतिं प्रपित्सुना प्रपत्तुमिच्छुना । प्रपद्यतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः । 'सनिमीमा'—इत्यादिनेसादेशः । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' इत्यभ्यासलोपः । अस्ता तन्द्रिरालस्यं यस्य तेन अस्ततन्द्रिणा अनलसेनेत्यर्थः । तदिः सौत्रो धातुः । तस्माद् 'वङ्क्र्यादयश्च' इत्यौणादिकः क्विन्प्रत्ययः 'कृदिकारदक्तिनो वा ङीष् वक्तव्य' इति । 'वन्दीघटीतरीतन्द्री' इति ङीषन्तोऽपि इति क्षीरस्वामी । तथा रामायणे प्रयोगः 'निस्तन्द्रिरमप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोष-

विद्' इति । तेन दुर्योधनेन । पुरुषस्य कर्म पौरुषम् पुरुषकारः । उद्योग इति यावत् । युवादित्वादण्प्रत्ययः । 'पौरुषं पुरुषस्योक्ते भावे कर्मणि तेजसि' इति विश्वः नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम् अहोरात्रयोरित्यर्थः । 'अचतुर' इत्यादिना सप्तम्यर्थवृत्त्योरव्ययोर्द्वन्द्वनिपातेऽच्समासान्तः । विभज्य अस्यां वेलायाम् इदं कर्मेति विभागं कृत्वा नयेन नीत्या वितन्यते विस्तार्यते ॥९॥

अन्वयः—कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तंदिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितन्यते ॥९॥

शब्दार्थः—कृतारिषड्वर्गजयेन = विजितकामक्रोधलोभादिषड्वैरिणा वशीकृतकामक्रोधादिषड्वैरिणा विहितान्तःस्थशत्रुषट्कामक्रोधादिविजयेन अर्थाद् अतिविनीतेन; काम-क्रोध-लोभ-मोह मद-मात्सर्य नामक हृदयदेश में रहने वाले षड्विध शत्रुओं के उपर विजय प्राप्त करने वाले, अपने अधिकार में रखने वाले अर्थात् अति विनीत रूप से । अगम्यरूपां = दुर्विज्ञेयां साधारणजनैः दुष्प्राप्यां, साधारण मनुष्यों के द्वारा अलभ्य, दुर्लभ, दुर्गम । मानवीं = मनुसंबन्धिनीं मनुप्रोक्तां प्रतिपादितां, कथं राज्ञा स्वप्रजा पालनीया; मनुसम्बन्धी, भगवान् मनु द्वारा बतलाई गई । पदवीं = प्रजपालजरीतिं नीतिं विधिं पद्धतिं, प्रजापालन की नीति; पद्धति को । प्रपित्सुना = प्राप्तुमिच्छुना प्रतिपत्तुमिच्छुना अधिगन्तुमिच्छुकेन मनोरथेन, प्राप्त करने की इच्छा, अभिलाषा वाला, इच्छुक । अस्ततन्द्रिणा = अनलसेन आलस्यरहितेन निरस्तालस्येन आलस्यशून्येन सदा तत्परेण, आलस्यरहित तन्द्राविहीन, सदा तत्पर, कर्त्तव्य परायण रहने वाले । तेन = धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठपुत्रेण दुर्योधनेन, धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र उस दुर्योधन के द्वारा । नक्तंदिवं = अहोरात्र रात्रिन्दिवम् अहर्निश, रात-दिन । विभज्य = विभागं कृत्वा अस्मिन् काले कार्यमिदं कर्त्तव्यम् इदं न करणीयम् एवं रूपेण समयविभागं कृत्वा, समय का विभाजन करके, इस समय में यह कार्य करना उपयुक्त है, यह नहीं—इस प्रकार कार्यानुसार समय का विभाजन करके । नयेन = नीत्या नीतिशास्त्रानुसारेण राजधर्मपालनेन न तु केवल स्वार्थबुद्ध्या, नीति, प्रजापालन की नीति के द्वारा, स्वार्थ बुद्धि से नहीं । पौरुषं = पुरुषार्थः उद्योगः पौरुषाचरणं; पुरुषार्थ, उद्योग । वितन्यते = विस्तार्यते, विस्तार किया जा रहा है, फैलाया जा रहा है ॥९॥

संस्कृतव्याख्या :—जितेन्द्रियो निरलसः स दुर्योधनो नयेन अनवरतम् अहर्निशं प्रजानुरञ्जनात् पुरुषार्थं वितनुते ।

कृतारिषड्वर्गजयेन अन्नः शत्रूणां कामक्रोधलोभादीनां यः षड्वर्गस्तस्य जयः इत्यरिषड्वर्गजयो विहितोऽरिषड्वर्गजयो येन तेन वशीकृतकामक्रोधलोभादिषडवैरिणा सामान्यजनैर्दुर्विज्ञेयां भगवता मनुना प्रतिपादितां प्रजापालन नीतिम् अधिगन्तुमिच्छुकेन अनलसेन सततं जागरूकेन धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण तेन दुर्योधनेन अहर्निशं कर्तव्यानुसारं समयविभागं कृत्वा 'अस्मिन् समये कार्यमिदं कर्तव्यमिदं न करणीयमिति' रूपेण समयविभाजनं कृत्वा नीतिशास्त्रानुसारेण पुरुषार्थः उद्योगो विस्तार्यते अर्थाद् अधुना स दुर्योधनः कामक्रोधादिषट्शत्रून् अन्तःस्थान् विजित्य मनुनीतिमवलम्ब्य निरलसः सन् कर्तव्यानुसारं समयं विभज्य नीतिशास्त्रेण पुरुषार्थं समर्द्धयति संपादयति ॥९॥

हिन्दी व्याख्या :— प्रस्तुत श्लोक में किरात कह रहा है कि जितेन्द्रिय आलस्यरहित वह दुर्योधन नीति के द्वारा निरन्तर रूप में प्रजा के अनुरञ्जन के द्वारा पुरुषार्थ की समृद्धि कर रहा है, अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है ।

काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्यरूपी अन्तःस्थित षड्विध शत्रुसमूह के ऊपर अधिकार करने वाले, सामान्य मनुष्यों के लिए दुर्गम भगवान् मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजापालन की नीति को प्राप्त करने की अभिलाषा वाले आलस्य-रहित उस दुर्योधन के द्वारा कर्तव्यानुसार रात-दिन रूप समय का समु-चित विभाजन करके नीतिशास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ को बढ़ाया जा रहा है ॥९॥

टिप्पणी :

कृतारिषड्वर्गजयेन = षण्णां वर्गः षड्वर्गः । षष्ठी तत्पुरुष । अरीणां षड्वर्गः । अरिषड्वर्गः । षष्ठी तत्पुरुष । कृतः अरिषड्वर्गस्य जयः येन सः, कृतारिषड्वर्गजयः, तेन । बहुव्रीहि । कृतः = √ कृ + क्त । जयः = √ जि + अच भावे ।

मानवीम् = मनोरियं मानवी, ताम् । मनु + अण् + ङीप् ।

अगम्यरूपाम् = न गम्यं रूपं यस्याः सा अगम्यरूपा, ताम् । बहुव्रीहि । नञ् + √गम् + यत्

पदवीम् = पद्यते अनयेति पदवी, ताम् । √पद + अवि उणादि 'पद्यतिभ्यामविः' पदवि + ङीष् ।

प्रपित्सुना = प्रपत्तुम् इच्छुः प्रपित्सुः, तेन । प्र + √ पद् + सन् + उः कर्त्तरि । 'सनाशंसिभिश्च उः'

नक्तन्दिवम् = नक्तं च दिवा च इति नक्तन्दिवम् । द्वन्द्व समास 'अचतुर इत्यादि से समासान्त अच् प्रत्यय ।

अस्ततन्द्रिणा = अस्ता तन्द्रिः यस्य, सः अस्ततन्द्रिः, तेन । बहुव्रीहि । अस्त = √अस् + क्त । तन्द्रिः = √ तद् + क्रिन् उणादि ।

पौरुषम् = पुरुषस्य कर्म पौरुषम् । पुरुष + अण् युवादित्वात् ।

नयेन = √ नी + अच् भावे । तृतीया एक वचन ।

विभज्य = वि + √ भज् + क्त्वा-ल्यप् ।

वितन्यते = वि √ तन + य लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

अरिषट् = कामःक्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥

कामन्दकी नीति ।

कोषः

अरिः = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः—इत्यमरः ।

वर्गः = वृन्दभेदाः समैर्वर्गः सङ्घसार्थौ तु जन्तुभिः = इत्यमरः ।

जयः = विजयो जयः— इत्यमरः ।

पदवी = अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः ।
सरणिः पद्धतिः पद्या वर्त्तन्येकपदीति च ॥ इत्यमरः ।

नयः = नयो न्याये—इत्यमरः ।

पौरूषम् = पुम्भावे तत्क्रियायां च पौरुषम्—इत्यमरः ।

तन्द्रिः—तन्द्री प्रमीला—इत्यमरः ।

अलङ्कारः— द्वितीय चरण में प तथा चतुर्थ में त और न को असकृत् आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास ।

छन्दः—वंशस्थ

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः ।
स सन्तत दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥ १० ॥

घण्टापथ—सखीनिवेति। गतस्मयो निरहङ्कारोऽत एव स दुर्योधनः । सन्ततम् अनारतं साधु सम्यक् अकपटमित्यर्थ । अनुजीविनः भृत्यान् । प्रीतियुजः स्निग्धान् सखीनिव मित्राणीव । दर्शयते । लोकस्येति शेषः । 'हेतुमति च' इति णिच् । 'णिचश्च' इत्यात्मनेपदम् । शोभनं हृदयं येषां तान् सुहृदो मित्राणि च । 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति निपातः । बन्धुभिः भ्रात्रादिभिः । समानमानान् तुल्यसत्कारान् दर्शयते। बन्धूनां समूहो बन्धुता ताम् । 'ग्रामजन्बन्धुसहायेभ्यस्तल्' । कृतमाधिपत्यं स्वाम्यं यस्यास्तां कृताधिपत्यामिव दर्शयते । बन्धूनधिपतीनिव दर्शयतीत्यर्थः । यथा भृत्यादिपु सख्यादिबुद्धिर्जायते लोकस्य तथा तान् सम्भावयतीत्यर्थः । अनुजीव्यादीनाम् 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इति कर्मत्वम् । पूर्वे त्वस्मिन्नेव पदान्वये वाक्यार्थमित्थं वर्णयन्ति–स राजाऽनुजीव्यादीन् सख्यादीनिव दर्शयते। सख्यादय इव ते तु तं पश्यन्ति । सख्यादिभावेन् पश्यतस्तांस्तथा दर्शयते । स्वयमेव छन्दानुवर्तितया स्वदर्शन तेभ्यः प्रयच्छतीत्यर्थः । अर्थात्तस्येप्सितकर्मत्वम् । अणिकर्तुरनुजीव्यादेः 'अभिवादिदृशोरात्मनेपदमुपसंख्यानम्' इति पाक्षिक कर्मत्वम् । एवं चात्राण्यन्तकर्मणो राज्ञो ण्यन्ते कर्तृत्वेऽपि 'आरोहयते हस्ती स्वयमेव' इत्यादिवदश्रूयमाणकर्मान्तरत्वाभावान्नाय णेरणादिसूत्रस्य विषय इति मत्वा 'णिचश्च' इत्यात्मनेपदं प्रतिपेदिरे । भाष्ये तु णेरणादिसूत्रविषयत्वमप्यस्योक्तम् । यथाह—'पश्यन्ति भृत्या राजानम्', 'दर्शयते भृत्यान् राजा', 'दर्शयते भृत्यै राजा' अत्रात्मनेपदं सिद्धं भवति' इति । अत्राह कैयटः- ननु कर्मान्तरसद्भावादत्रात्मनेपदेन भाव्यम् । उच्यते—अस्मादेवोदाहरणाद् भाष्यकारस्यायमेव अभिप्राय उह्यते । अण्यन्तावस्थायां ये कर्तृकर्मणी तद्व्यतिरिक्तकर्मान्तरसद्भावादात्मनेपदं न भवति । यथा 'स्थलमारोहयति मनुष्यान्' इति । इह त्वण्यन्तावस्थायां कर्तृणां भृत्यानां णौ कर्मत्वमिति भवत्येवात्मनेपदमिति ॥ १० ॥

अन्वयः—गतस्मयः सः अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन् इव, च सुहृदः बन्धुभिः समानमानान् (च) बन्धुतां कृताधिपत्याम् इव सन्ततं साधु दर्शयते ॥१०॥

शब्दार्थः—गतस्मयः = अपगतमानः विगतगर्वः त्यक्तमदः अहंकारशून्यः निरहङ्कारः अतिविनीतः; अभिमानरहित, अहंकारशून्य, अत्यन्त विनयशील। सः = धृतराष्ट्रस्य पुत्रो दुर्योधनः; धृतराष्ट्र का पुत्र वही दुर्योधन। अनुजीविनः = सेवकान् भृत्यान् अनुचरान्; सेवकों अनुचरों को। प्रीतियुजः = स्नेहयुक्तान् स्नेह-समन्वितान् स्नेहपात्रान् स्निग्धान्; स्नेहयुक्त, स्निग्ध। सखीन् = मित्राणि; मित्रों के। इव = तुल्यं; समान, तरह। च = और। सुहृदः = मित्राणि, मित्रों को। बन्धुभिः = भ्रात्रादिभिः निजपरिवारजनैः; भ्राता इत्यादि अपने परिवार के सदस्यों के। समानमानान् = तुल्यसत्कारान् समसत्कारान्; समान सत्कार वाला। (इव = तरह)। (च = और)। बन्धुतां = भ्रात्रादिबान्धववृन्दं बन्धुवर्गं कुटुम्बि-समूहं ज्ञातिसमूहं; बन्धुसमूह, पारिवारिक जनों को। कृताधिपत्यां = विहित स्वाम्यं कृतसर्वाधिकारं; किए गए आधिपत्य की। इव = तुल्यं; तरह, समान। सन्ततं = सततं निरन्तरं; सर्वदा, सदैव। साधु = सम्यग् रूपेण निष्कपटं निर्व्याजं; अच्छी तरह, छल-कपट रहित रूप से। दर्शयते = बोधयते; दिखलाता है, प्रदर्शित करता है ॥१०॥

संस्कृतव्याख्या—सेवकसुहृद्बान्धवान् प्रति कीदृशो व्यवहारो दुर्योधनस्येति प्रतिपाद्यतेऽस्मिन् श्लोके। तस्यानुरागविशेषो निरूप्यते—

अपगतमानो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः स दुर्योधनः सेवकान् स्निग्धान् प्रेमपूरितान् मित्राणीव मित्राणि च भ्रात्रादिभिर्निजपरिवारजनैः समं तुल्यसत्कारान् बन्धुवर्गं च विहितस्वाम्यमिव सततं निर्व्याजरूपेण बोधयते अर्थाद् अभिमानं परित्यज्य अतिविनीतः स दुर्योधनः सरलरूपेण सेवकैः सह स्निग्धसुहृद्वत्, मित्रैः सह बन्धुवद्, बन्धुभिः सह आत्मवद् व्यवहरति ॥१०॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में अनुचरों, मित्रों तथा बन्धुजनों के प्रति दुर्योधन के अनुरागपूर्ण व्यवहार का निरूपण किया गया है।

अभिमानरहित वह दुर्योधन सेवकों को स्निग्ध मित्रों की तरह, मित्रों को भ्राता इत्यादि पारिवारिक जनों की तरह समान सम्मान वाला तथा बन्धुजनों को राज्यग्रहण किए हुए अधिपति के समान सदैव सरल भाव से दिखलाता है अर्थात् अभिमान का सर्वथा परित्याग करके अत्यन्त विनीत वह दुर्योधन निष्कपट रूप से सेवकों के साथ मित्र जैसा, मित्रों के साथ बन्धुवत् और बन्धुजनों के साथ आत्मवत् व्यवहार करता है ।

समस्त प्रजा दुर्योधन में अनुरक्त है, अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है, यही किरात के कहने का अभिप्राय है ॥१०॥

टिप्पणी—

प्रीतियुजः = प्रीत्या युज्यन्ते इति प्रीतियुजः, तान् । उपपद तत्पुरुष ।

प्रीति = √प्री + क्तिन् । युजः = √युज् + क्विप् कर्त्तरि, द्वितीया बहुवचन ।

अनुजीविनः = अनु जीवन्ति इति अनुजीविनः, तान् । द्वितीया बहुवचन ।

अनु + √जीव् + णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये ।

समानमानान् = समानः मानः येषां ते समानमानाः, तान् । बहुव्रीहि ।

मानः √मन् + घञ् भावे ।

सुहृदः = शोभनं हृदय येषां ते सुहृदः, तान् । बहुव्रीहि । सु के योग में हृदय का हृद् आदेश । 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' निपात से

गतस्मयः = गतः स्मयः यस्मात् स गतस्मयः । बहुव्रीहि ।

गतः = √गम् + क्त । स्मयः = √स्मि + अच् ।

कृताधिपत्याम् = अधि पातीति अधिपतिः । प्रादितत्पुरुष । अधिपतेः भावः अधिपत्यम् । कृतम् आधिपत्यं यस्याः सा कृताधिपत्या, ताम् । बहुव्रीहि ।

अधिपतिः = अधि + √पा + डति कर्त्तरि । + भावे यक् = आधिपत्यम्, 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' । कृतम् = √कृ + क्त ।

बन्धुताम् = बन्धूनां समूहो बन्धुता, ताम्, बन्धु + तल् + टाप् ।

'ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्' समूह अर्थ में तल् ।

सन्ततम् = सम् + √तन् + क्त कर्मणि ।
दर्शयते = √दृश् + णिच् लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन ।
कोष:—
सखिन्-सुहृत् = वयस्य: स्निग्ध: सवया अथ मित्रं सखा सुहृत्—इत्यमर: ।
अनुजीविन् = सेवकार्थ्यनुजीविन: इत्यमर:
बन्धु: = सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वजना: समा—इत्यमर:
सन्ततम् = ~ततेऽनारताऽश्रान्तसन्तताऽविरताऽनिशम्—इत्यमर:
स्मय: = दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेक: स्मयो मद:—इत्यमर:
बन्धुता = ज्ञातेयं बन्धुता तेषां क्रमाद्भावसमूहयो:—इत्यमर:
अलंकार: - स, न की सकृत् आवृत्ति होने से
छेकानुप्रास । उपमा, चतुर्थ चरण में उत्प्रेक्षा ।
छन्द:—वंशस्थ ।

असक्तमाराधयतो यथायथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया ।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगण: परस्परम् ॥११॥

घण्टापथ—असक्तमिति । यथायथ यथास्वं विभज्य असङ्कीर्णरूपं विविच्येत्यर्थ: । 'यथास्वे यथायथम्' इति निपातनाद् द्विर्भावो नपुंसकत्वं च । 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपादिकस्य' इति ह्रस्वत्वम् । पक्षे पात: पक्षपात: आसक्तिविशेष: समस्तुल्यो यस्यां तया समपक्षपातया । भक्त्या अनुरागविशेषेण । पूज्येष्वनुरागो भक्तिरित्युपदेश: । पूज्यश्चायं त्रिवर्ग इति । असक्तमनासक्तम् । अव्यसनितयेति यावत् । आराधयत: सेवमानस्य अस्य दुर्योधनस्य । त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणस्त्रिगण त्रिवर्ग: । 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थै: । चतुर्वर्ग: समोक्षकै:' इत्यमर: । गुणानुरागात् तदीयगुणेष्वनुरागात् । गुणवदाश्रयलोभादित्यर्थ: । सख्यं मैत्रीम् । 'सख्युर्य:' इति यप्रत्यय: । ईयिवान् उपगतवानिवेत्युत्प्रेक्षा । 'उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' इति क्वसुप्रत्ययान्तो निपात: । 'नात्रोपसर्गस्तन्त्रम्' इति काशिकाकार आह स्म । परस्परं न बाधते । समवर्तित्वादस्य 'धर्मार्थकामा: परस्परानुपमर्देन वर्धन्त' इत्यर्थ: । उक्तं च धर्मार्थकामा: सममेव सेव्या यो ह्येकसक्त: स जनो जघन्य: इति: ॥११॥

अन्वयः—यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परं न बाधते ॥११॥

शब्दार्थः—यथायथं = यथायोग्यं यथोचितं स्वरूपानुकूलं; योग्यता के अनुसार, समुचित रूप से, स्वरूप के अनुकूल । विभज्य = विभागं कृत्वा विविच्य; विभाग, विभाजन करके अर्थात् 'अस्मिन् काले धर्म एवाचरणीयः, अस्मिन् कालेऽर्थोऽर्जनीयः अस्मिन् काले काम एव सेवनीयः' एवं रूपेण त्रि-विधेषु पुरुषार्थेषु कस्मिन् काले कः सेवनीयरित्येषां योग्यतानुसारं कालविभाजनं विधाय । समपक्षपातया = तुल्यासक्तिविशेषया समदृष्ट्या समानव्यवहारेण; समान आसक्ति; दृष्टि, व्यवहार रूपी । भक्त्या = प्रेम्णा अनुरागविशेषेण; भक्तिपूर्वक, अनुराग से । आसक्तं = अनासक्तम् आसक्तिरहितं यथा स्यात्तथा; आसक्तिरहित होकर, किसी के वश में न होकर । आराधयतः = आचरतः सेवमानस्य त्रिविधान् पुरुषार्थान् भजतः; धर्म-अर्थ-काम त्रिविध पुरुषार्थों का सेवन करते हुए । अस्य = दुर्योधनस्य; इस दुर्योधन के । त्रिगणः = त्रिवर्गः धर्मार्थकामसमूहः; धर्म-अर्थ काम रूपी त्रिवर्ग, त्रिविध पुरुषार्थ । गुणानुरागात् = दुर्योधनगतेषु दयादानदाक्षिण्यादिषु गुणेषु अनुरागात् स्नेहात्; दुर्योधन में विद्यमान रहने वाले दया-दान-दाक्षिण्य इत्यादि गुणों में अनुराग होने के कारण । सख्यं = मैत्रीं सुहृत्त्वं मित्रत्वं सखिभावं; मित्रता, सखाभाव को । इव = तरह । ईयिवान् = उपेयिवान् उपगतवान् प्राप्तवान्; प्राप्त करके । परस्परं = अन्योन्यं; एक दूसरे को । न = नहि; नही । बाधते = बाधां करोति व्यवधानं प्रस्तौति पीडयति ॥११॥

संस्कृतव्याख्या—सद्गुणसमन्वितः अनासक्तः दुर्योधनः सेवनसमयविभाजनं विधाय धर्मार्थकामानां त्रिविधपुरुषार्थानां समानानुरागेण सेवनं करोति—इति प्रतिपादितमत्र ।

यथायोग्यं स्वरूपानुकूलं सेवासमयस्य विभाजनं विधाय अर्थात् त्रिवर्गेषु कस्मिन् काले कः पुरुषार्थ सेवनीयः, अस्मिन् काले धर्मः अधुनाऽर्थः अधुना कामः सेव्यरितिरूपेण एतेषां सेवनकालं निश्चित्य समानव्यवहाररूपेण अनुरागविशेषेण अनासक्तं यथा स्यात्तथा त्रिविधान् पुरुषार्थान् सेवमानस्यास्य दुर्योधनस्य त्रिवर्ग-

स्तद्गतेषु दयादानदाक्षिण्यादिषु गुणेषु अनुरागात् सखिभावं प्राप्तः सन् परस्परम् अन्योन्यं न बाधते न पीडयति ॥११॥

भावार्थ—यद्यप्येते सर्वे पुरुषार्थाः परस्परं विरोधशीलाः सन्ति तथापि स्वरूपानुकूलमेषां सेवनसमयं विभज्य अनासक्तः स दुर्योधनः समानानुरागेण सर्वान् तान् सेवते। धर्माचरणकाले अर्थकामौ न बाधेते। अर्थोपार्जनकाले न धर्मकामौ बाधेते। एवं कामसेवनकाले धर्मार्थावपि न बाधेते। एव ते सर्वे निर्बाधरूपेण तिष्ठन्ति तस्मिन्।

हिन्दी व्याख्या—आदर्श भारतीय जीवन का सुन्दर चित्रण यहाँ पर किया गया है। सुन्दर गुणों से युक्त दुर्योधन अनासक्त भाव से धर्म-अर्थ-काम त्रिविध पुरुषार्थों का समान अनुरागपूर्वक सेवन कर रहा है, प्रस्तुत श्लोक में यही प्रतिपादित है।

स्वरूप के अनुसार विभाजन करके अर्थात् किस काल में किस पुरुषार्थ का सेवन उचित है, इस रूप से पुरुषार्थों के सेवन समय का विभाजन करके समान व्यवहार रूपी अनुराग से अनासक्त भाव से सेवन करते हुए इस दुर्योधन के त्रिवर्ग, धर्म-अर्थ-काम त्रिविध पुरुषार्थ इसमें रहने वाले दया-दान-दाक्षिण्य इत्यादि गुणों से आकृष्ट होने से मित्रवत् भाव को प्राप्त करके एक दूसरे को बाधित नहीं करते अर्थात् सुन्दर गुणों से युक्त दुर्योधन सभी पुरुषार्थों का समान रूप से सेवन कर रहा है ॥११॥

टिप्पणी :—

असक्तम् = न सक्तम् असक्तम्। नञ् तत्पुरुष। असक्तं यथा स्यात्तथा। क्रिया विशेषण। नञ् + √सञ्ज् + क्त कर्त्तरि।

यथायथम् = 'यथास्वे यथायथं' सूत्र से निपातन रूप में यथा का द्विर्भाव तथा नपुंसकत्व प्राप्ति। पुनः 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्वत्व की प्राप्ति अव्ययीभाव।

समपक्षपातया = पक्षे पातः पक्षपातः। सुप्सुपा। समः पक्षपातः यस्यां सा समपक्षपाता, तया। बहुव्रीहि। पातः = √पत् + घञ्।

गुणानुरागात् = गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः, तस्मात् । सुप्सुपा ।
अनु + √रञ्ज् + घञ् भावे ।

सख्यम् = सखि + य । 'सख्युर्यः'

त्रिगणः = त्रयाणां गणः त्रिगणः । षष्ठी तत्पुरुष ।

परस्परम् = परं परमिति परस्परम् । 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्' वार्तिक से परम् को द्वित्व की प्राप्ति ।

भक्त्या = √भज् + क्तिन् भावे = भक्तिः, तया ।

आराधयतः = आ + √णिच् शतृ, षष्ठी, एकवचन ।

विभज्य = वि + √भज् + क्त्वा—ल्यप् ।

ईयिवान् = √इ + लिट् क्वसु, प्रथमा, एकवचन ।

बाधते = √बाध् + लट्, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

कोषः—

असक्तम् = अनासक्तमसक्तं च पृथग्वर्तिस्थितम्—इति

भक्तिः = पूज्येष्वनुरागो भक्तिः—ईत्युपदेशः ।

परस्परम् = मिथोऽन्योन्यं परस्परम्—इति

सख्यम् = सख्यं साप्तदीनं स्यात्—इत्यमरः
अथ मित्रं सखा सुहृत्—इत्यमरः

त्रिवर्गः = त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः—इत्यमरः

अलंकार—छेकानुप्रास; प्रस्तुत उपमेय त्रिगण की अप्रस्तुत उपमान मित्रता प्राप्त करने वाले के साथ तादात्म्य संभावना से वाच्योत्प्रेक्षा ।

छंद—वंशस्थ

निरत्ययं साम न दानवर्जितं न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम् ।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी गुणानुराधेन विना न सत्क्रिया ॥१२॥

घण्टापथ—निरत्ययमिति । तस्य दुर्योधनस्य निरत्ययं निर्बाधम् । अमायिकमित्यर्थः । अन्यथा जनानां दुर्ग्रहत्वादिति भाव । साम सान्त्वम् । 'साम सान्त्वमुभे समे' इत्यमरः । दानवर्जितं न प्रवर्तते । अन्यथा लुब्धाद्यावर्जनस्य

शुष्कप्रियैर्वाक्यैर्दुष्करत्वादिति भावः। उक्तञ्च—'लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् साधुमञ्जलि-कर्मणा। मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम्' ॥ इति। तथा भूरि प्रभूतं न तु कदाचित् स्वल्पमित्यर्थः। दानं धनत्यागः। सदित्यादरार्थेऽव्ययम्। 'आदरानादरयोः सदसती' इति निपातसंज्ञास्मरणात्। तस्य क्रियां सत्क्रियां विरहय्य विहाय। 'ल्यपि लघुपूर्वात्' इत्ययादेशः। न प्रवर्तते। अनादरे दान-वैफल्यादिति भावः। न चैवं सर्वत्र, येनाविवेकित्वं कोशवृद्धिश्च स्यादित्याह—प्रेति। विशेषशालिनी अतिशययोगिनी। सत्क्रिया आदरक्रिया गुणानुरोधेन गुणानुरागेण विना न प्रवर्तते। 'पृथग्विना०' इत्यादिना तृतीया। गुणेष्वादरो भूरि दानं चेति नोक्तदोषावकाश इत्यर्थः। अत्रोत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वविशेषणतया स्थापनादेकावल्यलङ्कारः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'स्थाप्यतेऽपोह्यते वाऽपि यथापूर्वं परं परम्। विशेषणतया वस्तु यत्र सैकावली द्विधा इति' ॥१२॥

अन्वयः—तस्य निरत्ययं साम दानवर्जितं न प्रवर्तते। (तस्य) भूरि दानं सत्क्रियां विरहय्य न (प्रवर्तते)। (तस्य) विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न (प्रवर्तते) ॥१२॥

शब्दार्थः—तस्य = राज्ञः दुर्योधनस्य; उस राजा दुर्योधन का। निरत्ययं = निरापदं निर्बाधं निर्विघ्नं; बाधारहित, निर्विघ्न। साम = सामनीतिः शान्ति-प्रयोगः सान्त्वं प्रियवचनं; सामनीति का प्रयोग, मधुर वचन। दानवर्जितं = धनदानरहितम् अर्थवितरणविरहितं धनप्रदानेन विवर्जितं, धन के दान से रहित। न = नहि; नहीं। प्रवर्तते = प्रवृत्ता भवति; प्रवृत्त होती है। (तस्य)। भूरि = प्रभूतं प्रचुरं बहुलं; प्रभूत रूप में, प्रचुर मात्रा में। दानं = धनदानम् अर्थवितरणं धनप्रयोगः; धन का दान। सत्क्रियां = सत्कारं सम्मानं; सत्कार, सम्मान को। विरहय्य = विहाय परित्यज्य अनादृत्य; छोड़कर, बिना, अभाव में। न = नहि; नहीं। (प्रवर्तते)। (तस्य)। विशेषशालिनी = विशेषप्रशंसायोग्या प्रशंसनीया शोभनीया; विशेष रूप से प्रशंसा के योग्य, सुशोभित होने वाली, विशेषता से युक्त। सत्क्रिया = सत्कारः आदरयुक्ता क्रिया; सम्मान, आदर से युक्त क्रिया। गुणानुरोधेन = गुणानाम् अनुरागेण पक्षपातेन विद्याविनयसदाचारादिगुणानां

दर्शनेन; विद्या-विनय-सदाचार इत्यादि गुणों के अनुराग के। बिना = बिना। न = नहि; नहीं। (प्रवर्तते)। अर्थात् गुणसमलंकृतस्यैव पुरुषस्य स सत्कारं करोति न तु निर्गुणस्य ॥१२॥

संस्कृतव्याख्या:—राजनीतेः चतुर्विधानामुपायानां विनियोगे दुर्योधनोऽति कुशलः। अत्रास्मिन् श्लोके सामदानरूपौ द्वौ उपायौ निरूपितौ।

तस्य राज्ञो दुर्योधनस्य निरापदा सामनीतिरर्थवितरणं विना न प्रवृत्ता भवति। तस्य प्रभूतम् अर्थवितरणमपि सत्कारं विहाय न प्रवृत्तं भवति। एवमेव तस्य दुर्योधनस्य प्रशंसनीयः सत्कारो विद्याविनयसदाचारादिगुणानाम् अनुरागेण विना न प्रवृत्तो भवति अर्थात्तस्य सामनीतिर्धनयुता भवति। यस्योपरि स प्रसन्नो भवति तस्मै प्रभूतं धनं ददाति धनं च ससम्मानं प्रयच्छति न तु निरादरपूर्वकम्। सत्क्रियां सम्मानं च स गुणवतः करोति न तु गुणविहीनस्य ॥१२॥

हिन्दी व्याख्या—साम-दान-दण्ड भेद नामक राजनीति के चतुर्विध उपायों के प्रयोग में वह दुर्योधन अत्यन्त कुशल है। प्रस्तुत श्लोक में साम तथा दान दो उपायों के सुन्दर सफल विनियोग का चित्रण किया गया है।

उस दुर्योधन की बाधा रहित सामनीति का प्रयोग धन दान के बिना नहीं होता। उसका प्रभूत रूप में धनदान आदर सहित क्रिया के बिना नहीं होता। उसका विशेषता से युक्त, प्रशंसनीय सम्मान भी विद्या-विनय-सदाचार इत्यादि उत्तम गुणों के अनुराग के बिना नहीं होता अर्थात् दुर्योधन की सामनीति दान से पूर्ण होती है, जिसके ऊपर प्रसन्न होता है उसे प्रभूत मात्रा में धन देता है और सम्मानपूर्वक ही वह दान देता है तथा उत्तम गुणों से अलंकृत पुरुष का ही वह सम्मान करता है, गुण से विहीन का नहीं ॥१२॥

टिप्पणी—

निरत्ययम् = निर्गतः अत्ययः अस्मादिति। बहुव्रीहि।

निर् + अति + √इ + अच् भावे।

दानवर्जितम् = दानेन वर्जितं दानवर्जितम्। तृतीया तत्पुरुष।

दानम् = √दा + ल्युट् भावे। वर्जितम् = √वृज् + णिच् + क्त कर्मणि।

विशेषशालिनी = विशेषेण शालते इति विशेषशालिनी । उपपद समास ।

विशेषः = वि + √शिष् + घञ् भावे ।

शालिनी = √शाल् + णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये ।

'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'

गुणानुरोधेन = गुणानाम् अनुरोधः, तेन । षष्ठी तत्पुरुष ।

अनु + √रुध् + घञ् भावे ।

'पृथग्विनानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' विना के योग में तृतीया ।

भूरि = √भू + क्रिन् (उणादि) । भवति इति भूरि । 'अदिशदिभूशुभिभ्यः' से क्रिन् प्रत्यय ।

सत्क्रिया = 'आदरानादरयोः सदसती' से आदर अर्थ में 'सत्' अव्यय का निपातन । सत् तस्य क्रिया इति सत्क्रिया, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष ।

विरहय्य = वि + √रह् + णिच् + क्त्वा-ल्यप् ।

प्रवर्तते = प्र + √वृत् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन ।

कोषः

अत्ययः = अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे दोषे दण्डेऽप्ययथापदि—इत्यमरः ।

साम = साम सान्त्वमुभे समे—इत्यमरः ।

दानम् = त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जनविसर्जने—इत्यमरः ।

भूरि = पुरुहूः पुरु भूयिष्ठं स्फारं भूयश्च भूरि च—इत्यमरः ।

अलङ्कार :—पूर्व-पूर्व वाक्य के विशेषण के रूप में उत्तर-उत्तर वाक्य की स्थापना होने से एकावली अलङ्कार ।

छन्द :—वंशस्थ ।

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः ।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ॥१३॥

घण्टापथ—वसूनीति । वशी स दुर्योधनो वसूनि धनानि वाञ्छन्न लोभान्नेत्यर्थः । वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । निहन्तीति शेषः । तथा मन्युना कोपेन न च । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः । 'धर्मशास्त्रानुसारेण

क्रोधलोभविवर्जितः' इति स्मरणादित्यर्थः। किन्तु निवृत्तकारणो निवृत्तलोभादिनिमित्तः सन् स्वधर्म इत्येव। स्वस्य राज्ञः सतो ममायं धर्मो ममेदं कर्तव्यमित्यस्मादेव हेतोरित्यर्थः। 'अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति' इति स्मरणादिति भावः। गुरुपदिष्टेन प्राड्विवाकोपदिष्टेन। 'धर्मशास्त्रं पुरस्कृत्य प्राड्विवाकमते स्थितः। समाहितमतिः पश्येद् व्यवहाराननुक्रमात्॥ इति नारदस्मरणात्। दण्डेन दमेन। शिक्षयेत्यर्थः। रिपौ सुतेऽपि वा। स्थितमिति शेषः। एतेनास्य समदर्शित्वमुक्तम्। धर्मविप्लवं धर्मव्यतिक्रमम्। अधर्ममिति यावत्। निहन्ति निवारयति। दुष्ट एवास्य शत्रुः शिष्ट एव बन्धुः। न तु सम्बन्धनिबन्धनः पक्षपातोऽस्तीत्यर्थः॥१३॥

अन्वयः—वशी सः वसूनि वाञ्छन् न, मन्युना न (अपितु) निवृत्तकारणः (सन्) स्वधर्मः एव (एषः) इति गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ वा सुते अपि धर्मविप्लवं निहन्ति॥१३॥

शब्दार्थः—वशी = जितेन्द्रियः; सभी इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला। सः = दुर्योधनः; वह दुर्योधन। वसूनि = धनानि; धनों को। वाञ्छन् = प्राप्तुमभिलषन्; प्राप्त करने की इच्छा, अभिलाषा रखता हुआ। न = नहि; नहीं। मन्युना = कोपेन क्रोधेन; क्रोध की भावना से अभिभूत होकर। न = नहि; नहीं। (अपितु)। निवृत्तकारणः (सन्) = कारणरहितः सन् लोभक्रोधादिभावनाविरहितः; लोभ-क्रोध इत्यादि भावनाओं कारणों से रहित होकर। स्वधर्मः एव (एषः) = एष राजधर्मः, अयं मम धर्मः, मम दुर्योधनस्य कर्त्तव्यमेव इदं; यह राजधर्म है, मुझ राजा दुर्योधन का यह कर्त्तव्य है। इति = एवं रूपेण; इस प्रकार से। गुरूपदिष्टेन = गुरुशिक्षितेन, मनुकौटल्यबृहस्पतियाज्ञवल्क्यादिभिः शास्त्रकारैः प्रदत्तोपदेशानुसारेण; गुरुजनों के उपदेश के अनुसार, मनु इत्यादि धर्माचार्यों के द्वारा बतलाए गए। दण्डेन = दमेन दण्डविधानेन दण्डयित्वा; दण्ड के द्वारा, दण्ड देकर। रिपौ = शत्रौ शत्रुविषये; शत्रु में वा = अथवा। सुते = पुत्रे स्वकीयपुत्रविषये; अपने पुत्र में। अपि = भी। (विद्यमानं स्थितं)। धर्मविप्लवं = धर्मव्यतिक्रमं धर्मविरुद्धं नीतेरुलंघनं = धर्म, नीतिमार्ग के उलङ्घन

को। निहन्ति = निवारयति धर्मस्य विप्लवम् अधर्मं दण्डेन निवारयति, दूर करता है, निवारण करता है ॥१३॥

संस्कृतव्याख्या—अत्रास्मिन् श्लोके राज्ञो दुर्योधनस्य दण्डनीतिः प्रशंसिता। अस्याः प्रयोगे स कुशलः। स्वयं तु जितेन्द्रियः। अतः शत्रुं सुतमुभयं प्रति समदृष्ट्या समाचरन् वर्तयन् धर्मस्य व्यतिक्रमं निवारयन् धर्मं रक्षति।

जितेन्द्रियः स दुर्योधनो धनान्यभिलषन्न एवं कोपेन न, अपितु कारण रहितो लोभक्रोधरागद्वेषादिभावनाविरहितः सन् 'एष राज्ञः स्वधर्मः, मम कर्त्तव्यमिदमि'तिरूपेण मनुकौटल्यबृहस्पतियाज्ञवल्क्यादिभिर्धर्माचार्यैरुपदिष्टेन प्रतिपादितेन दण्डेन दमेन शत्रौ स्वकीयपुत्रेऽपि वा स्थितं धर्मस्य व्यतिक्रम अधर्मं निवारयति।

भावार्थः—दण्डनीतेः समुचितप्रयोगेण स दुर्योधनो धर्मं रक्षति। प्रजाजनं प्रति तस्य पक्षपातरहिता समदृष्टिर्विद्यते। अर्थसंचयलोभाद् अथवा क्रोधेनाभिभूतः स कदापि कमपि जनं न दण्डयति, अपितु धर्मो रक्षितव्यो मयेति भावनया सापराधजनानेव दण्डयति न तु कदापि दोषरहितान् सज्जनान् ॥१३॥

हिन्दी व्याख्या:—प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की दण्डनीति की प्रशंसा की गई है। इसके प्रयोग में वह कुशल है। वह स्वयं जितेन्द्रिय है। शत्रु तथा पुत्र के प्रति समदृष्टि से व्यवहार करता हुआ वह धर्म के व्यतिक्रम का निराकरण करके धर्म की रक्षा करता है।

सभी इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला जितेन्द्रय वह दुर्योधन धन प्राप्त करने की अभिलाषा रखता हुआ नहीं और न क्रोध की भावना से ही प्रजाजनों को दण्ड देता है अपितु लोभ क्रोध राग द्वेष इत्यादि समस्त कारणों से रहित होकर 'यह राजा का धर्म है, यह मेरा कर्त्तव्य है' इस भावना से प्रेरित होकर मनु-कौटल्य-वृहस्पति-याज्ञवल्क्य इत्यादि धर्माचार्यों द्वारा उपदेश दिए गए, दण्डविधान से शत्रु अथवा अपने पुत्र में भी विद्यमान धर्म के व्यतिक्रम अर्थात् अधर्म का निवारण करता है अर्थात् धर्म रक्षणीय है। इस प्रकार इसका उलंघन करने वाले को वह दण्ड अवश्य देता है, वह शत्रु हो अथवा स्वयं उसका ही पुत्र। ॥१३॥

इससे दुर्योधन की न्यायप्रियता, निष्पक्षता तथा धर्मपरायणता का ज्ञान होता है। स्मृतियों में भी कहा गया है—

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥

मनु० ८।३ ५

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥

नारदस्मृति

टिप्पणी :

वशी = वशः अस्ति अस्येति । वश + इनि मत्वर्थे

निवृत्तकारणः = निवृत्तं कारणं यस्मात्, सः । बहुव्रीहि ।

निवृत्तम् = नि + √वृत् + क्त कर्त्तरि

कारणम् = √कृ + णिच् + ल्युट् करणे ।

धर्मविप्लवम् = धर्मस्य विप्लवः धर्मविप्लवः, तम् । षष्ठी तत्पुरुष ।

वि + √प्लु + अप् भावे ।

स्वधर्मः = धरति लोकान्, ध्रियते पुण्यात्मभिः, ध्रियतेऽधः पतन् पुरुषोऽनेनेति धर्मः ।

√धृ + मन् । स्वस्य धर्मः स्वधर्मः । षष्ठी तत्पुरुष ।

गुरूपदिष्टेन = गुरुभिः उपदिष्टः गुरूपदिष्टः, तेन । तृतीया तत्पुरुष ।

उपदिष्टः = उप + √दिश् + क्त कर्मणि ।

रिपुः = √रप् + कु । रपति दोषं व्यञ्जयति अनिष्टम् अथवा रपति हन्ति इति ।

रप् दोषव्यञ्जने हिंसायाम् । 'शिशोरपोरिच्च' ।

निहन्ति = नि + √हन् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

वाञ्छन् = √वाञ्छ् + लट् शतृ, प्रथमा एकवचन ।

कोषः

वसु = वसु तोये धने मणौ—इति वैजयन्ती ।

मन्युः = मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि—इत्यमरः ।

रिपुः = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः—इत्यमरः।
सुतः = आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी—इत्यमरः।
दण्डः = साहसं तु दमो दण्डः—इत्यमरः

अलंकार—त की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास। धर्मविप्लव के निवारण में हेतुभूत स्वधर्म का कथन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार।

छन्दः— वंशस्थ

विधाय रक्षान् परितः परेतरानशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः ॥१४॥

घण्टापथ—विधायेति। शङ्का सञ्जाताऽस्य शङ्कितोऽविश्वस्तः सन्। परितः सर्वत्र स्वपरमण्डले परेतरान् आत्मीयान् अवञ्चकानिति यावत्। यद्वा परानितरयन्ति भेदेनात्मसात्कुर्वन्तीति परेतरान्। 'तत्करोतीति' ण्यन्तात्कर्मण्यण्प्रत्ययः। रक्षन्तीति रक्षान् रक्षकान्। मन्त्रगुप्तिसमर्थानित्यर्थः। 'नन्दिग्रही' त्यादिना पचाद्यच्। विधाय कृत्वा। नियुज्येत्यर्थः। अशङ्किताकारम् उपैति स्वयमविश्वस्तोऽपि विश्वस्तवदेव व्यवहरन् परमुखेनैव परान् भिनत्तीत्यर्थः। न च तान् रक्षानुपेक्षते येन तेऽपि विकुर्वीरन्नित्याह—क्रियेति। क्रियाऽपवर्गेषु कर्मसमाप्तिषु। अनुजीविसात्कृता भृत्याधीनाः कृताः। अपरावर्तिततया दत्ता इत्यर्थः। 'देये त्रा च' इति सातिप्रत्ययः। सम्पदः अस्य राज्ञः कृतज्ञतामुपकारित्वं वदन्ति। प्रीतिदानैरेवास्य कृतज्ञत्वं प्रकाश्यते, न तु वाङ्मात्रेणेत्यर्थः। कृतज्ञे राजनि अनुजीविनोऽनुरज्यन्तेऽनुरक्ताश्च तं रक्षन्तीति भावः ॥१४॥

अन्वयः—शङ्कितः (सः) परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कृतज्ञतां वदन्ति ॥१४॥

शब्दार्थः—शङ्कितः = सञ्जातशङ्कः सन्देहयुक्तः सन्देहापन्नः सन्; उत्पन्न हुई आशंका वाला, संदेहयुक्त : (सः = दुर्योधनः; वह दुर्योधन)। परितः = सर्वतः सर्वत्र स्वकीयराज्ये परकीये च; सभी जगह, अपने राज्य तथा दूसरे राज्य में। परेतरान = आत्मीयजनान् स्वजनान् भेदपूर्वकं परान् आत्मीयकारिणः,

आत्मीय जनों को, विश्वस्त जनों को अथवा भेदपूर्वक शत्रुपक्ष को अपना बनाने वाले जनों को। रक्षान् = रक्षकान् मन्त्रगुप्तिसमर्थान् परवृत्तान्तज्ञाने कुशलान्; रक्षकों को, शत्रुओं के रहस्यों को जानने में कुशल मनुष्यों को। विधाय = नियुज्य संप्रेष्य; नियुक्त करके, भेज करके। अशङ्कितकारं = विश्वस्ताकृतिं स्वयमविश्वस्तोऽपि विश्वस्तवदेव व्यवहरन् सन्देहयुक्तो भयाकुलोऽपि विगतभयं दर्शयन्; विश्वस्त, संदेहरहित आकृति को, हृदय में भय की भावना होने पर ही बाह्य रूप में भयरहित मुखाकृति को। उपैति = प्राप्नोति आचरति दर्शयति; प्राप्त करता है, दिखलाता है। क्रियापवर्गेषु = कार्यावसानेषु कृत्यावसानेषु कर्मणां समाप्तिषु; कार्यों के पूर्ण, समाप्त हो जाने पर। अनुजीविसात्कृताः = भृत्यायत्तीकृताः अनुचरेभ्यः प्रदत्ताः सेवकेभ्यः समर्पिताः; अनुचरों, सेवकों को प्रदान की गई। सम्पदः = संपत्तयः धनानि; संपत्तियाँ, धन। अस्य = दुर्योधनस्य; इस दुर्योधन की। कृतज्ञतां = उपकारित्वम् उपकारज्ञतां; उपकार की भावना को। वदन्ति = ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति; कहती हैं, प्रकाशित करती हैं ॥१४॥

संस्कृतव्याख्या—अत्र श्लोकेऽस्मिन् दुर्योधनस्य भयभावः सुरक्षाव्यवस्था प्रभूतधनादिदानेन उपकारित्वादिभावा निरूपिताः।

प्रबलारिकारणात् सञ्जातशङ्कः सन् राजसिंहासनस्थः स राजा दुर्योधनः सर्वतः स्वकीयराज्ये परकीये च स्वजनान् आत्मीयान् भेदपूर्वकं परान् आत्मीयकारिणो जनान् वा संरक्षकरूपेण संस्थाप्य विश्वस्ताकृतिं प्राप्नोति। मनसि भयमनुभवन्नपि प्रकटरूपेण भयरहितं विश्वस्तवदेव व्यवहरति। कृत्यावसानेषु कर्मणां समाप्तिषु अनुचरायत्तीकृताः सेवकेभ्यः समर्पिताः संयच्छिताः संपत्तयोऽस्य दुर्योधनस्योपकारज्ञतां ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति ॥१४॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की भयभावना, अपनी सुरक्षा-हेतु की गई व्यवस्था तथा प्रभूत दान के द्वारा कृतज्ञता इत्यादि भावों का निरूपण किया गया है।

प्रबल शत्रु पाण्डवों के कारण संदेहयुक्त अर्थात् मन मे सदैव भय का अनुभव करता हुआ सिंहासनारूढ़ वह दुर्योधन अपने चारों ओर आत्मीयजनों को अथवा भेदपूर्वक शत्रुपक्ष को अपनी ओर मिलाने वाले मनुष्यों को संरक्षक के रूप में नियुक्त करके संदेहरहित आकृति को धारण करता है अर्थात् मन में भयभीत होते हुए भी बाह्यरूप में भयरहित-सा अपने को प्रदर्शित करता है। कार्यों के पूर्ण हो जाने पर सेवकों को प्रदान की गई संपत्तियाँ इस राजा दुर्योधन की कृतज्ञता की भावना को प्रकाशित करती हैं ॥१४॥

टिप्पणी :

रक्षान् = रक्षन्तीति रक्षाः, तान् । √रक्ष + अच् ।

परेतरान् = (१) परेभ्यः इतरे परेतरे तान् । पञ्चमी तत्पुरुष अथवा सुप्सुपा ।

(२) परान् इतरयन्ति भेदादिप्रयोगेन आत्मीयान् कुर्वन्ति इति परेतराः, तान् । द्वितीया तत्पुरुष ।

पर + इतरि + अण् कर्त्तरि ।

अशङ्किताकारम् = शङ्का सञ्जाता अस्येति शङ्कितः । शङ्का + इतच् ।

'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' से इतच् प्रत्यय ।

न शङ्कितः अशङ्कितः । नञ् तत्पुरुष ।

अशङ्कितस्य आकारः अशङ्किताकारः, तम् । षष्ठी तत्पुरुष ।

आकारः = आ + √कृ + घञ् भावे ।

क्रियापवर्गेषु = क्रियाणाम् अपवर्गाः क्रियापवर्गाः, षष्ठी तत्पुरुष ।

अपवर्गः = अप + √वृज् + णिच् + घञ् भावे ।

अनुजीविसात्कृताः = अनुजीवन्तीति अनुजीविनः । अनुजीविनां सात्कृताः इति अनुजीविसात्कृताः ।

अनुजीविनः = अनु + √जीव् + णिनि ।

अनुजीविन् + साति + √कृ + क्त टाप् ।

'देये त्रा च' सूत्र से 'साति' प्रत्यय अधीनार्थे ।

कृतज्ञताम् = (१) कृतं जानाति इति कृतज्ञः । तस्य भावः कृतज्ञता, ताम् ।

कृतम् = √कृ + क्त । कृत + √ज्ञा + क = कृतज्ञः ।

'आतोऽनुपसर्गे कः' से क प्रत्यय ।

कृतज्ञता = कृतज्ञ + तल् + टाप् ।

(२) जानातीतिज्ञ । √ज्ञा + क ।

कृतज्ञस्य भावः कृतज्ञता ।

सम्पद् = सम् + √पद् + क्विप् ।

परितः = परि + तस् ।

विधाय = वि + √धा + क्त्वा—ल्यप् ।

उपैति = उप + √इ × लट् लकार प्रथम पुरुष, एक वचन ।

कोष :

परितः = समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि—इत्यमरः ।

अपवर्गः = अपवर्गोऽवसानस्तु मोक्षोऽपि निगद्यते—इति ।

अपवर्गस्त्यागमोक्षयोः । क्रियावसाने साकल्ये—इति हैमः ।

सम्पद् = अथ सम्पदि सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च—इत्यमरः ।

अलङ्कारः—रकार, तकार को असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास; काव्य-लिङ्ग ।

छन्दः—वंशस्थ

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः ।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायतीरुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः ॥१५॥

घण्टापथ—अनारतमिति । तेन राज्ञा पदेषु उपादेयवस्तुषु । 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः । सम्यग् असङ्कीर्णमव्यस्तं च विभज्य विविच्य । विनियोगसत्क्रियाः विनियोग एव सत्क्रियाऽनुग्रहः सत्कार इति यावत् । येषां ते । लम्भिताः । स्थानेषु सम्यक् प्रयुक्ता इत्यर्थः । उपाय-विशेषणं वा । उपायाः सामादयः सङ्घर्षं परस्परस्पर्धाम् उपेत्येवेत्युत्प्रेक्षा । परिबृंहितायतीः प्रचितोत्तरकाला; स्थिरा इत्यर्थः अर्थसम्पदः अनारतमजस्रं फलन्ति प्रसुवत इत्यर्थः ॥ १५ ॥

अन्वयः—तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्भिताः उपायाः सङ्घर्षम् उपेत्य इव परिबृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ति ॥१५॥

शब्दार्थः—केन = दुर्योधनेन; उस दुर्योधन के द्वारा। पदेषु = उपादेयवस्तुषु ग्राह्यपदार्थेषु कर्त्तव्येषु उपादेय वस्तुओं में, कर्त्तव्यों में, समुचित स्थानों मे। सम्यक् = यथायोग्यं यथोचितं समुचितरूपेण, योग्यता के अनुसार, समुचित रूप से। विभज्य = विविच्य विभाजनं कृत्वा; विभाग करके। विनियोगसत्क्रियाः = विनियोगानुग्रहाः विनियोगेन प्रयोगेन सत्कारवन्तः; विनियोग, प्रयोग के सत्कार का। लम्भिताः—प्रापिताः प्रयुक्ताः यथास्थानं, प्राप्त कराए गए; यथास्थान प्रयोग किए गए। उपायाः = सामदानदण्डभेदाः चत्वारः उपाया राजनीतेः; राजनीति के साम-दाम-दण्ड-भेद नामक चतुर्विध उपाय। संघर्ष = परस्परम् अन्योन्यं स्पर्धाभावं; परस्पर स्पर्धाभाव को। उपेत्य इव = प्राप्य इव; मानो प्राप्त करके। परिबृंहितायतीः = प्रचितोत्तरकालाः परिबृंहिताः आयतीः यासां ताः स्थिरः उत्तरकालो यासां ताः, स्थिर भविष्यवाली, भविष्य मे वृद्धि को प्राप्त करने वाली, स्थायी। अर्थसम्पदः = अर्थसम्पत्तीः धनानि; संपत्तियों, धनों को। अनारतं = सततं निरन्तरं; सतत, निरन्तर रूप से फलन्ति = उत्पादयन्ति प्रसुवते; उत्पन्न करते है ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या—सामदानदण्डभेदानां चतुर्णामुपायानां विनियोगे दुर्योधनः कुशलः। सम्यग्विनियोजिता एते सर्वे तं समर्द्धयन्ति।

तेन राज्ञा दुर्योधनेन उपादेयवस्तुषु कर्त्तव्येषु यथायोग्यं विभाजनं कृत्वा विनियोगानुग्रहाः समुचितप्रयोगेण सत्कृताः सामदानदण्डभेदाश्चत्वारः उपायाः परस्परं स्पर्धाभावं सम्प्राप्येव परिबृंहिताः स्थिराः आयतीः यासां ताः प्रचितोत्तर कालाः अर्थसम्पतीः सततं निरन्तरमुत्पादयन्ति अर्थात् समुचितरूपेण प्रयुक्ता एते सर्वे उपायाः सर्वत्र तं साफल्यं समृद्धिं संयच्छन्ति ॥१५॥

हिन्दी व्याख्या—राजनीति के सामदानदण्डभेद सभी उपाय के प्रयोग में दुर्योधन कुशल है। समुचिमरूप से प्रयोग किए गये ये सभी उपाय सभी कार्यों में सफलता तथा समृद्धि को प्रदान कर रहे हैं।

उस दुर्योधन के द्वारा उपादेय वस्तुओं में कर्त्तव्यों में योग्यता के अनुसार **विभाजन** करके प्रयोग के सत्कार को प्राप्त कराए गए सामदानदण्डभेद नामक राजनीति के चारों उपाय परस्पर स्पर्धा को प्राप्त किए हुए की तरह स्थिर भविष्य वाली, स्थाई रूप से भविष्य में वृद्धि को प्राप्त करने वाली सम्पत्तियों को निरन्तर उत्पन्न कर रहे है।

भावार्थ—दुर्योधन को पूर्णतः विदित है कि किस कार्य की सिद्धि के लिए किस उपाय का प्रयोग करना चाहिए। यही सम्यक् प्रयोग ही उपायों का सत्कार है और इस प्रकार सभी उपाय स्थायी रहने वाली समृद्धि को निरन्तर उसे प्रदान कर रहे हैं ॥१५॥

टिप्पणी :

अनारतम् = अविद्यमानम् आरतं यस्मिन् तत्।

न आरतम् अनारतम्। नञ् तत्पुरुष।

नञ् + आ + √रम् + क्त कर्त्तरि।

विनियोगसत्क्रियाः = (१) विनियोगः सत्क्रिया येषां ते। बहुव्रीहि।

(२) विनियोगाः एवं सत्क्रियाः कर्मधारय।

विनियोगः = वि + नि + √युज् + घञ् भावे।

परिबृंहितायतीः = परिबृंहिताः आयतीः यासां, ताः। बहुव्रीहि।

परिबृंहिता = परि + √बृंह + णिच् + क्त कर्मणि + टाप्।

आयतिः = आ + √यम् + क्तिन् भावे।

अर्थसंपदः = अर्थानां सम्पद् इति ताः षष्ठी तत्पुरुष अथवा अर्थाः एव सम्पदः ताः। अवधारणपूर्वपद कर्मधारय।

सम्पद् = सम् + √पद् + क्विप्। प्रथमा बहुवचन।

उपायः = उप + ई + घञ् अथवा √इ + अच्।

संघर्षः = सम् + घृष् + घञ्।

लम्भिताः = √लभ् + णिच् + क्त कर्मणि।

उपेत्य = उप + √इ + क्त्वा—ल्यप्। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तकार का आगमन्।

विभज्य = वि + √भज् + क्त्वा—ल्यप् ।
फलन्ति = √फल + लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन ।
कोष :
पदम् = पदं व्यसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु—इत्यमरः
उपायः = भेदो दण्डः साम दानमित्युपायचतुष्टयम्—इत्यमरः
सम्पद् = अथ सम्पदि सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च—इत्यमरः
अनारतम् = सततेऽनारताश्रान्तसन्तताऽविरतानिशम् । नित्याऽनवरताऽजस्रम् ।
इत्यमरः ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा अलंकार
छन्द : वंशस्थ

अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥१६॥

घण्टापथ—अनेकेति । अयुग्मच्छदस्य सप्तपर्णपुष्पस्य गन्ध इव गन्धो यस्यासौ अयुग्मच्छदगन्धिः । 'सप्तम्युपमान'—इत्यादिना बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च । 'उपमानाच्च' इति समासान्त इकारः । नृपाणामुपायनान्युपहारभूता ये दन्तिनस्तेषां नृपोपायनदन्तिनां मदः । 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः । राज्ञामपत्यानि पुमांसो राजन्याः क्षत्रियाः । 'राजश्वशुराद्यत्' इति यत्प्रत्ययः । राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणादन् । रथाश्चाश्वाश्च रथाश्वम् । सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः । अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वेन सङ्कुलं व्याप्तम् अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम् तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं सभामण्डपाङ्गणं भृशम् अत्यर्थम् आर्द्रतां पङ्किलत्वं नयति । एतेन महासमृद्धिरस्योक्ता । अत एवोदात्तालंकारः । तथा चालंकारसूत्रम्—'समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्त' इति ॥१६॥

अन्वय—अयुग्मच्छदगन्धिः नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयति ॥१६॥

शब्दार्थ :—अयुग्मच्छदगन्धिः = सप्तपर्णपुष्पसुगन्धिः सप्तपर्णसुरभिः अयुग्मच्छदस्य सप्तपर्णपुष्पस्य गन्ध इव गन्धो यस्यासौ अयुग्मच्छदगन्धिः, न युग्माः

विषमा: छदा: पत्राणि यस्य सोऽयुग्मच्छद: सप्तपर्णपुष्पं तस्य गन्ध इव गन्धो यस्यासावयुग्मच्छदगन्धि:; सप्तपर्ण पुष्प, छितवन की सुगन्धि के समान गन्ध वाला। नृपोपायनदन्तिनां = राज्ञामुपहारभूतानां गजानां राजोपहारहस्तिनां; अन्य राजाओं के (द्वारा प्रदान किए गए) उपहार रूप हाथियों का। मदः = दान वारि गण्डस्थलनि:सृतजलविशेष:; दानजल, मदजल। अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं = नानानरपतिवृन्दरथघोटकसंकीर्णं बहुनृपस्यन्दनवाजिसंक्रान्तं बहूनाम् अनेकेषां राजन्यानां क्षत्रियाणां रथाश्वेन संकुलं व्याप्तम् आकीर्णं; अनेक राजाओं के रथों और अश्वों से व्याप्त, भरा हुआ। तदीयं = दुर्योधनसंबन्धि; दुर्योधन का। आस्थाननिकेतनाजिरं = सभाभवनप्राङ्गणं सभामण्डपांगणम् आस्थानस्य सभायाः यन्निकेतनं गृहं मण्डपः तस्य अजिरम् अंगणं; सभाभवन के प्राङ्गण को। भृशं = अत्यर्थम् अत्यधिकम् अत्यन्तं; अत्यधिक, बहुत ही अधिक। आर्द्रतां = पङ्किलत्वं; आर्द्र, गीला, पंकिल, कीचड़युक्त। नयति = प्रापयति; बना रहा है।

संस्कृत व्याख्या—स्ववशवर्त्तिनां करदानार्थमागतानां राज्ञां रथवाजिसमूह-व्याप्तं दुर्योधनस्य सभाभवनस्याजिरम्। तत्तु नृपोपहारभूतहस्तिमदजलेन नितरामार्द्रतां नीतम्। अत्र दुर्योधनस्य अतिशयः प्रभावो निरूपितः।

सप्तपर्णपुष्पसुगन्धियुतं राजोपहारभूतगजानां मदजलं दानवारि बहुनृपरथा-श्वसमाकीर्णं व्याप्तं तस्य राज्ञो दुर्योधनस्य सभाभवनाजिरम् अङ्गणम् अत्यर्थं पङ्किलत्वं प्रापयति ॥१६॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन के अतिशय प्रभाव का निरूपण किया गया है।

सप्तपर्ण पुष्प (छितवन) की सुगन्धि के समान गन्ध वाला आधीन राजाओं के द्वारा उपहार में प्रदान किए गए हाथियों का (गण्डस्थल से निकलने वाला) मदजल अनेक राजाओं के रथों तथा अश्वों से भरे हुए राजा दुर्योधन के सभा-भवन के आंगन को अत्यधिक आर्द्र, पंकिल बना रहा है।

भावार्थ—दुर्योधन के सभाभवन का आँगन अन्य राजाओं के द्वारा उपहार में दिए गए मदस्रावी विशाल गजराजों से भरा हुआ है, इससे उसके अतिशय प्रभुत्व का प्रकाशन हो रहा है ॥१६॥

टिप्पणी :—

अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम् = राज्ञां समूहो राजन्यः अथवा राज्ञाम् अपत्यानि पुमांसो राजन्याः। न एके अनेके। नञ् तत्पुरुष। अनेके राजन्याः अनेकराजन्याः; कर्मधारय। रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम्। समाहार द्वन्द्व। 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से नपुंसकलिङ्ग। अनेकराजन्यरथाश्वेन अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम्। तृतोया तत्पुरुष।

राजन्यः = राजन् + यत्। रथः = √रन् + क्थन्। अश्व = √अश् + संकुलम् क्वन्।

अस्थाननिकेतनाजिरम् = आतिष्ठन्ति आस्थीयतेऽस्मिन्निति आस्थानम्।

आ + √स्था + ल्युट् अधिकरणे।

निकित्यतेऽस्मिन्निति। नि + √कित् + ल्युट् अधिकरणे।

अजिरम् = √अज् + इर (किरच् उणादि)

आस्थानस्य निकेतनम् आस्थाननिकेतनम्। षष्ठी तत्पुरुषः।

आस्थाननिकेतनस्य अजिरम् आस्थाननिकेतननाजिरम्। षष्ठी तत्पुरुषः।

अयुग्मच्छगन्धिः = न युग्मः अयुग्मः। नञ् तत्पुरुष। अयुग्माः छदाः अस्येति अयुग्मच्छदः। बहुव्रीहि। अयुग्मच्छदस्य विकारः पुष्पम् अयुग्मच्छदम्। अयुग्मच्छद + अण् = अयुग्मच्छदम्। 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' से अण् का लोप तथा नपुंसक लिङ्ग। अयुग्मच्छदस्य गन्धः अयुग्मच्छदगन्धः। षष्ठी तत्पुरुष। अयुग्मच्छदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य तद् अयुग्मच्छदगन्धिः। बहुब्रोहि। 'उपमानाच्च' से 'इ'। गन्धिः।

नृपोपायनदन्तिनाम् = नॄन् पान्तीति नृपाः। नृपाणाम् उपायनानि नृपोपायनानि। षष्ठी तत्पुरुष। अतिशयितौ दन्तौ एषामिति दन्तिनः। नृपोपायनानि दन्तिनः नृपोपायनदन्तिनः तेषाम्। कर्मधारय। नृपः = नृ + √पा + क कर्त्तरि।

उपायनम् = उप + √इ + ल्युट् भावे।

दन्तिन् = दन्त + इनि मत्वर्थे प्रशंसायां यद्वा आतिशय्ये।

आर्द्रताम् = आर्द्रस्य भावः आर्द्रता, ताम्। आर्द्र + तल् टाप्।

नयति = √नी + लट् प्रथम पुरुष, एकवचन ।

कोष :

राजन्यः = मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्—इत्यमरः

अश्वः = घोटके वीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः—इत्यमरः

अजिरम् = अंगणं चत्वराजिरे—इत्यमरः

सप्तपर्णः = सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः—इत्यमरः

छदः = पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान् ।

उपायनम् = उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा—इत्यमरः

मदः = गण्डः कटो मदो दानम्—इत्यमरः

सङ्कुलम् = सङ्कुलं त्रिषु विस्पष्टवचि व्याप्ते—इति ।

अलंकार : नकार की असकृत आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास ।

समृद्धि का वर्णन होने से उदात्त अलंकार ।

छन्द : वंशस्थ ।

सुखेन लभ्या दधतः कृषीबलैरकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः ।
वितन्वति क्षेममदेवमातृकाश्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति ॥१७॥

घण्टापथ—सुखेनेति । चिराय तस्मिन् दुर्योधने क्षेमं वितन्वति क्षेमंकरे सति । देवः पर्जन्यः माता येषां ते देवमातृकाः वृष्ट्यम्बुजीविनो देशाः ते न भवन्ति इति, 'अदेवमातृका' नदीमातृका इत्यर्थः । 'देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः । स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम् ॥' इत्यमरः । एतेनास्य कुल्याऽऽदिपूर्तप्रवर्तकत्वमुक्तम् । कुरूणां निवासाः कुरवो जनपदविशेषाः । कृष्टेन पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः । 'राजसूय०'—इत्यादिना कर्मकर्तरि क्यप्प्रत्ययान्तो निपातः । तद्विपरीता अकृष्टपच्या इव । कृषिर्येषामस्तीति कृषीवलः तैः कृषिवलैः । कर्षकैरित्यर्थः । 'रजः कृषि०'—इत्यादिना वलच्प्रत्ययः । 'वले' इति दीर्घः । सुखेन अक्लेशेन लभ्या लब्धुं शक्याः सस्यसम्पदो दधतो धारयन्तः । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमागमप्रतिषेधः । चकासति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्त इत्यर्थः । 'अदभ्यस्तात्' इति झेरदादेशः । 'जक्षित्यादयः षट्' इत्यभ्यस्तसंज्ञा । सम्पन्नजनपदत्वादसन्तापकरत्वाच्च दुःसाध्योऽयमिति भावः ॥१७॥

अन्वयः—चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्वति (सति) अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्याः इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः (सन्तः) चकासति ॥१७॥

शब्दार्थः—चिराय = चिरकालं चिरकालपर्यन्तं बहुकालेन; दीर्घकाल तक, बहुत समय तक । तस्मिन् = दुर्योधने; उस दुर्योधन के । क्षेमं = प्रजासु कल्याणं कुशलं; प्रजाओं के प्रति कल्याण, कुशल का । वितन्वति (सति) = विस्तारयति वितरति कुर्वति सति; विस्तार, संपादन करते रहने पर । अदेवमातृकाः = नदीमातृकाः कृत्रिमनदीमातृकाः पालिताः नदीजलजीविनः; वृष्टि के ऊपर आश्रित न रहनेवाला, पर्जन्य की अपेक्षा न करने वाला, कृत्रिम नदियों, नहरों के जल से सींचा जाने वाला, सींचित होने वाला । कुरवः = कुरूणां निवासाः देशविशेषाः कुरुसंज्ञकनृपाणां निवासाः कुरवः; कुरुदेश । अकृष्टपच्याः इव = अकर्षणसिद्धाः इव, हलाद्यचालितक्षेत्रोद्भूताः इव, हलादिभिः कर्षणं विनैव सस्यजनितारः; बिना कर्षण के ही परिपक्व हो गई, पक गई सी । कृषीवलैः = कर्षकैः कृषिकर्मकैः क्षेत्रपतिभिः; कृषकों के द्वारा । सुखेन = सुखपूर्वकम् अप्रयासेन अप्रयत्नेन अल्पायासेन अनायासेन; सुखपूर्वक, बिना प्रयास, परिश्रम के । लभ्याः = प्राप्याः लब्धुं शक्याः; प्राप्त करने योग्य, सुलभ । सस्यसम्पदः = सस्यराजीः धान्यसम्पत्तीः; फसल की सम्पत्तियों, समृद्धि को । दधतः (सन्तः) = धारयन्तः सन्त; धारण करता हुआ । चकासति = शोभन्ते विराजन्ते दीप्यते शोभां प्राप्नुवन्ति; सुशोभित हो रहा है ॥१७॥

संस्कृतव्याख्या—प्रजाहितसाधने संलग्नो दुर्योधनः । तस्यैव प्रयासेन समृद्धः कुरुदेशः सुशोभते । प्रजानुरञ्जनात् स सुखेन न वश्यैरिति प्रतिपादितमत्र ।

चिरकालपर्यन्तं तस्मिन् दुर्योधने प्रजासु कल्याणं वितरति कुर्वन्ति सति कृत्रिमनदीपालिताः नदीजलजीविनः कुरवः देशविशेषाः हलादिभिः कर्षण विनैव सस्यजनितारः कृषकैः सुखपूर्वकम् अल्पप्रयासेन लब्धुं शक्याः धान्यसम्पत्तीर्धारयन्तः सन्तः सुशोभन्ते विराजन्ते ॥१७॥

हिन्दी व्याख्याः—प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की धार्मिकता तथा कुरुदेश की समृद्धि का निरूपण किया गया है ।

दीर्घकाल तक उस दुर्योधन के प्रजाजनों का हित संपादन करते रहने पर वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला अर्थात् कृत्रिम नदियों के जल से सींचित होने वाला कुरुदेश बिना कर्षण के ही परिपक्व हो गई सी कृषकों के द्वारा सुखपूर्वक प्राप्त होने वाली फसल की समृद्धि को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

भावार्थः—प्रजा के हित संपादन मे दुर्योधन लगा हुआ है। उसके प्रयास से कुरुदेश अत्यन्त समृद्ध है। अतः प्रजाजनों के अनुरञ्जन के कारण सरलतापूर्वक वह पराजित किए जाने योग्य नहीं है—यही किरात के कथन का अभिप्राय है ॥१७॥

टिप्पणी :

कृषीवलैः = कृषिरेव अस्ति येषां ते कृषीवलाः, तैः। कृषिः = √कृष् + इ। कृषि + वलच्। 'रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् से वलच्। वलच् के कारण इ का दीर्घत्व कृषी।

अकृष्टपच्याः = कृष्टेन पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः। न कृष्टपच्याः अकृष्टपच्याः। नञ् तत्पुरुष। कृष्टम् = √कृष् + क्त कर्मणि। पच्या = √पच् + क्यप् कर्मकर्तरि।

'राजसूयसूर्यमृषाद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्यापथ्याः' से कर्त्तरि क्यप्।

सस्यसम्पदः = सस्यानां सम्पदः सस्यसम्पदः, ताः। षष्ठी तत्पुरुष। अथवा सस्यान्येव सम्पदः, ताः। कर्मधारय।

सम्पद् = सम् + √पद् + क्विप्।

अदेवमातृकाः = देवः एव माता येषां ते देवमातृकाः। बहुव्रीहि।

न देवमातृकाः अदेवमातृकाः। नञ् तत्पुरुष।

मातृ + कप्। 'नद्यृतश्च' से।

कुरवः = कुरूणां निवासाः कुरवः। 'तस्य निवासः' के अण्। कुरु + अण्। किंतु अण् का लोप। 'जनपदे लुप्' बहुवचन 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' सूत्र से।

लभ्याः = √लभ् + यत् कर्मणि।

दधतः = √धा + लट् शतृ, प्रथमा बहुवचन ।
वितन्वति = वि + √तन् + लट् शतृ, सप्तमी एकवचन ।
चकासति = √चकास् + लट् प्रथमपुरुष, बहुवचन ।
सुखेन = तृतीया 'प्रकृत्यादिभ्यश्चोपसङ्ख्यानम्' सूत्र से ।
तस्मिन् वितन्वति = सप्तमी, 'यस्य भावेन भावलक्षणम्' ।
कोष :
चिराय = चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः—इत्यमरः
कृषीवलः = क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृषकश्च कृषीवलः—इत्यमरः
देवमातृकः = देशो नद्यम्बुवृष्ट्याम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः ।
स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम् ॥ इत्यमरः
सस्यम् = वृक्षादीनां फलं सस्यम्—इत्यमरः
क्षेमम् = श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ।
भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम्—इत्यमरः
अलंकार : उत्प्रेक्षा । कुछ आचार्य उपमा ।
छन्द : वंशस्थ

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया ।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ॥१८॥

घण्टापथः—उदारेति । उदारकीर्तेः महायशसः । 'उदारो दातृमहतो' इत्यमरः । दयावतः परदुःखप्रहाणेच्छोः । अत एव प्रशान्तबाधं प्रशमितोपद्रवं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम् उदयविशेषणं वा । 'वा दान्तशान्त'—इत्यादिना शमिधातोर्ण्यन्तान्निष्ठान्तो निपातः । अभिरक्षया सर्वतस्त्राणेन उदयं वृद्धि दिशतः सम्पादयतो वसूपमानस्य कुबेरोपमस्य । 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' इति विश्वः । अस्य दुर्योधनस्य गुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिः उपस्नुता द्राविता मेदिनी वसूनि धनानि । 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । स्वयं प्रदुग्धे । अक्लेशेन दुह्यत इत्यर्थः । दुहेः कर्मकर्तरि लट् । 'न दुहस्नुनमां यक्चिणौ' इति यक्प्रतिषेधः । यथा केनचिद्विदग्धेन नवप्रसूता रक्षिता च गौः स्वयं अदुग्धे तद्व-

दिति भावः। अलङ्कारस्तु—'विशेषणमात्रसाम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः" इति सर्वस्वकारः। अत्र प्रतीयमानया गवा सह प्रकृताङ्ग्या मेदिन्या भेदेऽभेददलक्षणातिशयोक्तिवशाद्दोह्यत्वेनोक्तिरिति सङ्क्षेपः ॥१८॥

अन्वयः—उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे ॥१८॥

शब्दार्थः—उदारकीर्तेः = विततयशसः महायशसः उत्कृष्टयशस्विनः उदारा उत्कृष्टा कीर्तिर्यशो यस्य तस्य उदारकीर्तेः, प्रथितयश वाले, महान् यश वाले दयावतः = दयान्वितस्य करुणाशालिनः दया, करुणा से युक्त। अभिरक्षया = सर्वतः रक्षया सर्वथा रक्षणेन; सब ओर से रक्षा के द्वारा, सब प्रकार की रक्षा से। प्रशान्तबाधं = निरूपद्रवं यथा स्यात्तथा निर्विघ्नं, उपद्रवरहित, निर्विघ्न, शान्त हुई बाधा वाले। उदयं = अभ्युदयम् उत्कर्षम् उन्नतिं; अभ्युदय, उत्कर्ष, वृद्धि को। दिशतः = संदिशतः संपादयतः सम्पन्न करते हुए। वसूपमानस्य = कुबेरोपमस्य कुवेरतुल्यस्य; धन के अधिपति कुवेर के समान। अस्य = दुर्योधनस्य; इस दुर्योधन के। गुणैः = दयादानदाक्षिण्यौदार्यगाम्भीर्यशौर्यादिभिर्गुणैः; दया-दान-विनयशीलता-उदारता-गम्भीरता-वीरता इत्यादि गुणों के द्वारा। उपस्नुता = द्राविता द्रवीभूता; द्रवित हुई। मेदिनी = वसुन्धरा, पृथिवी; वसूनि = धनानि; धनों को। स्वयं = आत्मनैव सुखेन अप्रेरिता; स्वयं ही, स्वतः। प्रदुग्धे = सुखेन दुह्यते अक्लेशेन दुह्यते ददाति; दुह देती है, प्रदान करती है ॥१८॥

संस्कृतव्याख्या—सद्गुणैः समलङ्कृतो दुर्योधनः सर्वतः प्रजाः रक्षन् ता अभ्युदयं नयतीति प्रतिपादितमत्र।

विततयशसो दयान्वितस्य सर्वतः प्रजानां रक्षणेन निरूपद्रवम् अभ्युदयं संपादयतः कुबेरोपमस्य अस्य दुर्योधनस्य दयादानदाक्षिण्यौदार्यगाम्भीर्यशौर्यादिभिर्गुणैः द्रवीभूता वसुन्धरा स्वयमेव अप्रेरिताऽपि धनानि सुखेन दुह्यते प्रयच्छति यथा हरिततृणादिभिः संपोषिता काचिद् धेनुः ॥१८॥

हिन्दीव्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में सद्गुणों से अलंकृत दुर्योधन द्वारा सभी प्रकार से प्रयाजनों की रक्षा तथा निरन्तर समृद्धि का उल्लेख किया गया है। महान् यश वाले दयालु तथा सभी ओर से सुरक्षा द्वारा उपद्रव रहित अभ्युदय

को प्रदान करते हुए, धन के अधिपति कुबेर के समान इस दुर्योधन के दया-दान-विनयशीलता-उदारता-गम्भीरता-वीरता इत्यादि गुणों से द्रवित हुई यह वसुन्धरा स्वयं ही धनों को दुह दे रही है यथा तृण इत्यादि के द्वारा संपोषित प्रसन्न हुई कोई धेनु ॥१८॥

भावार्थ—दुर्योधन समस्त बाधाओं से प्रजाजनों की रक्षा कर रहा है और राज्य निरन्तर समृद्धि को प्राप्त करता जा रहा है। अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है—यही किरात के कहने का अभिप्राय है।

टिप्पणी—

उदारकीर्तेः = उदारा कीर्तिः यस्य, स उदारकीर्तिः, तस्य। बहुव्रीहि।

उदारः = उद् + √ऋ + घञ् भावे। कीर्तिः = √कॄत् + क्तिन्।

उदयम् = उद् + √इ + अच् भावे = उदयः, तम्।

दयावतः = दया अस्ति अस्येति दयावान्; तस्य।

दया + मतुप्। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' से मतुप् को वतुप्।

प्रशान्तबाधम् = (१) प्रशान्ता बाधा यस्मिन्। बहुव्रीहि।

(२) प्रशान्ता बाधा यस्य स प्रशान्तबाधः, तम्। बहुव्रीहि।

(३) प्रशान्ता बाधा यथा स्यात्तथा। अव्ययीभाव क्रियाविशेषण।

प्रशान्ता = प्र + √शम् + णिच् + क्त टाप्।

बाधा = √बाध् + अ भावे टाप्।

वसूपमानस्य = वसुः उपमानम् अस्येति वसूपमानः, तस्य। बहुव्रीहि।

उपमीयतेऽनेनेति। उप + √मा + ल्युट् = उपमानम्।

अभिरक्षया = अभि + √रक्ष् + अ + टाप् = अभिरक्षा, अभितः रक्षा, तया।

उपस्नुता = उप + √स्नु + क्त टाप्।

दिशतः = √दिश् + लट् शतृ, षष्ठी एकवचन।

प्रदुग्धे = प्र + √दुह + लट् कर्मकर्तरि, प्रथमपुरुष एकवचन।

'दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम्' वार्त्तिक से दुह यहाँ पर सकर्मक क्रिया है।

कोष—

मेदिनी = गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही—इत्यमरः।

दया = कृपा दयाऽनुकम्पा स्याद्—इत्यमरः।

वसुः = वसु तोये धने मणौ—इति वैजयन्ती।

वसुः = वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु—इति विश्वः।

बाधा = पीडा बाधा व्यथादुःखमित्यमरः।

उदारः = उदारो दातृमहतोः—इत्यमरः।

कीर्तिः = यशः कीर्तिः समज्ञा च—इत्यमरः।

अलङ्कारः—प्रस्तुत मेदिनी के वर्णन से अप्रस्तुत धेनु की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार। मेदिनी—धेनु में भेद होने पर भी अभेद रूप में वर्णन होने से भेदकातिशयोक्ति अलंकार।

छन्द—वंशस्थ।

महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।

नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ॥१९॥

घण्टापथ—महौजस इति। महौजसो महाबलाः। अन्यथा दुर्बलानामनुपकारित्वादिति भावः। मानः कुलशीलाद्यभिमान एव धनं येषां त मानधनाः। अन्यथा कदाचिद् बलदर्पाद्विकुर्वीरन्निति भावः। धनार्चिताः धनैरर्चिताः सत्कृताः। अन्यथा दारिद्र्यादेनं जह्युरिति भावः। संयति सङ्ग्रामे लब्धकीर्तयः बहुयशस इत्यर्थः। अन्यथा कदाचिन्मुह्येयुरिति भावः। 'संहता मिथः' सङ्गताः स्वार्थनिष्ठा न भवन्तीति नसंहताः। नञर्थस्य नशब्दस्य 'सुप्सुपे'ति समासः। भिन्नवृत्तयो मिथो विरोधात् स्वामिकार्यकरा न भवन्तीति नभिन्नवृत्तयः। पूर्ववत् समासः। अन्यथा स्वामिकार्यविघातकतया स्वामिद्रोहिणः स्युरित्युभयत्रापि तात्पर्यार्थः। धनुर्भृतो धानुष्काः। आयुधीयमात्रोपलक्षणमेतत्। प्राधान्याद्धनुर्ग्रहणम्। तस्य दुर्योधनस्य असुभिः प्राणैः प्रियाणि समीहितुं कर्तुं वाञ्छन्ति। आनृण्यार्थं प्राणान्दातुमिच्छन्ति। अन्यथा दोषस्मरणादिति भावः। अत्र महौजसादिपदार्थानां प्राणदानकर्तव्यतां प्रति विशेषणगत्या हेतुत्वाभिधानात्

काव्यलिङ्गमलंकारः । लक्षणं तूक्तम् । तथा साभिप्रायविशेषणत्वात् परिकरालङ्कार इति द्वयोस्तिलतण्डुलवद् विभक्ततया स्फुरणात् संसृष्टिः ॥१९॥

अन्वय :—महौजसः मानधनाः धनार्चिताः संयति लब्धकीर्तयः धनुर्भृतः नसंहताः नभिन्नवृत्तयः (अपितु) तस्य प्रियाणि असुभिः समीहितुं वाञ्छन्ति ॥१९॥

शब्दार्थं :—महौजसः = अतितेजस्विनः महाबलाः प्रतापिनः; अत्यन्त बलशाली पराक्रमी । मानधनाः = मनस्विनः मानः कुलशीलाद्यभिमानः एव धनं येषां ते; मनस्वी, परिवार की प्रतिष्ठा ही है धन जिनके। धनार्चिताः = धनसत्कृताः वित्तैः सम्मानिताः प्रचुरधनप्रदानेन प्रसन्नीकृताः; प्रचुर मात्रा मे धनदान से सम्मानित प्रसन्न किए गए । संयति = युद्धे संग्रामे समरे; युद्ध में समरभूमि में । लब्धकीर्तयः = प्राप्तयशसः अर्जितयशसः; प्राप्त यश वाले, प्रख्यात कीर्ति वाले युद्ध भूमि में सदैव विजयश्री लाभ करने वाले । धनुर्भृतः + धनुर्धारिणः धनुर्धराः धानुष्काः; धनुष को धारण करने वाले सैनिक । नसंहताः = न संमिलिताः परस्परं स्वार्थसिद्धयर्थं न संगताः स्वर्थरहिता; परस्पर स्वार्थवश संगठित न होने वाले । नभिन्नवृत्तयः = न पृथग् व्यापाराः न विरुद्धाः एकव्यापाराः स्वामिप्रयोजनपूरका एव; प्रतिकूल आचरण न करने वाले, समान प्रयोजन वाले, स्वामी के हित को संपन्न करने वाले (अपितु) । तस्य = दुर्योधनस्य; उस दुर्योधन का । प्रियाणि = अभीष्टानि अभिमतानि हितकराणि; प्रिय कार्य को, अभिलषित, हित को । असुभिः = स्वप्राणैरपि स्वकीयप्राणप्रदानेनापि; अपने प्राणों के द्वारा, अपने जीवन को समर्पित करके भी । समीहितुं = विधातुं कर्तुं; सम्पन्न करने के लिए, पूर्ण करने को । वाञ्छन्ति = अभिलषन्ति अभिकाङ्क्षन्ति; अभिलाषा करते हैं, इच्छा रखते हैं ॥ १९ ॥

संस्कृतव्याख्या—भटानां सद्गुणा निरूपिता अत्र । ते स्वस्वामिनः हितसाधकाः । अतो लघुनोपायेन स दुर्योधनो न वश्य इति किरातस्य अभिप्रायः ।

अतितेजस्विनो मनस्विनः प्रभूतधनप्रदानेन सम्मानिताः समरे समर्जितयशसो धनुर्धराः स्वार्थसिद्धयर्थं न संगता न विरुद्धव्यापारा अपितु स्वस्वामिनः प्रयोज-

नस्यैव पूरका वीरभटास्तस्य दुर्योधनस्य अभिमतानि प्रयोजनानि स्वकीयप्राण-प्रदानेनापि संवादयितुम् अभिलषन्ति ॥ १९ ॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में वीर सैनिकों के सुन्दर गुणों का निरूपण किया गया है ।

अत्यन्त तेजस्वी, मनस्वी, प्रचुर मात्रा में धन प्रदान करने से सम्मानित, युद्धभूमि मे सदैव विजयश्री लाभ करने वाले, धनुष को धारण करने वाले, अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए परस्पर संगठित न होने वाले, प्रतिकूल आचरण न करने वाले अर्थात् सदैव अपने स्वामी के हित को ही सम्पन्न करने वाले वीर सैनिक उस दुर्योधन के प्रयोजनों को अपने प्राणों को प्रदान करके भी पूर्ण करने की अभिलाषा रखते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ—समस्त वीर सैनिक अपने जीवनदान के द्वारा भी दुर्योधन के हितसंपादन में सदैव उद्यत हैं । अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है—यही किरात के कथन का अभिप्राय है ।

टिप्पणी :

महौजसः = महत् ओजः येषां, ते बहुव्रीहि ।

महत् = √मह + अति । ओजस् = √उब्ज् + असुन्, बलोप ।

मानधनाः = मानः एव धनं येषां, ते । बहुव्रीहि ।

मानः = √मन् + घञ् भावे ।

धनार्चिता = धनेन अर्चिताः । तृतीया तत्पुरुष ।

अर्चिताः = √अर्च् + णिच् + क्त कर्मणि ।

धनुर्भृतः = धनुः बिभर्ति इति धनुर्भृतः, ते । उपपद तत्पुरुष ।

धनुष् + √भृ + क्विप् कर्त्तरि । धनुः = √धन + उस् ।

लब्धकीर्तयः = लब्धा कीर्तिः यैः, ते । बहुव्रीहि ।

√लभ् + क्त टाप् ।

नसंहताः = न संहताः नसंहताः । सुप्सुपा ।

संहताः = सम् + √हन् + क्त कर्त्तरि ।

नभिन्नवृत्तयः = भिन्नाः वृत्तयः येषां ते, भिन्नवृत्तयः । बहुव्रीहि ।

न भिन्नवृत्तयः नभिन्नवृत्तयः । सुप्सुपा ।

भिन्ना + √ भिद् + क्त टाप् । वृत्तिः = √वृत् + क्तिन् ।

संयति = सम् + √यम् + क्विप् अधिकरणे = संयत्, तस्याम् ।

असुभिः = अस्यन्ते इति । √अस् + उन् उणादि ।

समीहितुम् = सम् + √ईह + तुमुन् ।

वाञ्छन्ति = √वाञ्छ् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन ।

कोषः

महत् = 'बृहद्विशालं पृथुलं महत्' ।

वृत्तिः = 'आजीवी जीविका वार्ता वृत्तिवर्त्तनजीवने' ।

असुः = 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाश्चैवं जीवोऽसुधारणम्' ।

कीर्तिः = 'यशः कीर्तिः समज्ञा च ।'

'ओजो दीप्तौ बने स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये'

मान = 'मानश्चित्तसमुन्नतिः'—इत्यमरः ॥

ओजः = ओजो दीप्तावविष्टम्भे प्रकाशबलयोरपि—इति मेदिनी ।

अलङ्कारः—कारणनिर्देशपूर्वक समर्थन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार । साभिप्राय विशेषण होने से परिकर अलंकार । उभय अलंकारों की तिलतण्डुलवत् स्थित होने से संसृष्टि अलंकार ।

छन्दः—वंशस्थ ।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः स वेद निःशेषमशेषितक्रियाः ।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः ॥२०॥

घण्टापथ—महीभृतामिति । अशेषितक्रियः समापितकृत्यः । आफलोदयकर्मेत्यर्थः । स दुर्योधनः । शच्चरितैः शुद्धचरितैः अवञ्चकैरित्यर्थः । चरन्तीति चरास्तैः चरैः प्रणिधिभिः । पचाद्यच् । महीभृतां क्रियाः प्रारम्भान्निःशेषं वेद वेत्ति । 'विदो लटो वा' इति णलादेशः । स्वरहस्यं तु न कश्चिद्वेदेत्याह—महोदयैरिति । धातुरिव तस्य दुर्योधनस्येहितम् उद्योगो महोदयैर्महावृद्धिभिः । हितमनुबध्नन्त्यनुरुन्धन्तीति हितानुबन्धिभिः स्वन्तैरित्यर्थः । फलैः कार्यसिद्धिभिः प्रतीयते ज्ञायते । फलानुमेयास्तस्य प्रारम्भा इत्यर्थः ॥२०॥

अन्वयः—अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निःशेषं वेद । धातुः इव तस्य ईहितं महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते ॥२०॥

शब्दार्थः—अशेषितक्रियः = अनवशिष्टकार्यः समापितक्रियः, कार्यों को शेष न छोड़नेवाला; समस्त कर्त्तव्यों को भलीभाँति सम्पन्न करने वाला । सः = दुर्योधनः; वह दुर्योधन । सच्चरितैः = शुद्धचरितैः सत्यशीलैः शुभाचरणैः अवञ्चकैः, सुन्दर आचरणवाले, प्रवञ्चना न करने वाले । चरैः = दूतैः गुप्तचरैः; दूतों, गुप्तचरों के द्वारा । महीभृतां = भूभृताम् अन्यभूपतीनां; अन्य राजाओं के । क्रियाः = कार्याणि सकलव्यापारान् व्यवहारान्, सभी प्रकार की क्रियाओं को, रहस्यों, गुप्त मन्त्रणाओं को । निःशेषं = अशेषं संपूर्णं समग्रं सकलं; संपूर्ण रूप में, पूरी तरह से । वेद = वेत्ति जानाति; जानता है । धातुः इव = विधातुः इव परमेश्वरस्य इव; विधाता, परमेश्वर की तरह । तस्य = दुर्योधनस्य; उस दुर्योधन का । ईहितं = अभिलषितं चेष्टितम् उद्योगः, अभिलषित चेष्टाएँ, उद्योग, व्यापार । महोदयैः = प्रभूतसमृद्धिभिः अथवा महानुभावैः; प्रभूत समृद्धि, उत्कर्ष वाले अथवा महान् पुरुषों विद्वानों के द्वारा । हितानुबन्धिभिः = कल्याणेप्सुभिः स्वन्तैः माङ्गलिकैः; कल्याणमय, परिणाम सुखद, मांगलिक । फलैः = कार्यसिद्धिभिः परिणामैः; कार्य की सिद्धियों के द्वारा, परिणामों के द्वारा । प्रतीयते = ज्ञायते अनुमीयते; ज्ञात होता है, प्रतीत होता है ॥१०॥

संस्कृतव्याख्या—स्वमन्त्रगोपने परवृत्तान्तज्ञाने दुर्योधनस्य चरव्यवस्था निरूपिताऽत्रास्मिन् श्लोके ।

समापितक्रियः स दुर्योधनः शुद्धचरितैः अवञ्चकैर्गुप्तचरैरन्यभूपतीनां गूढव्यवहारान् अशेषरूपेण जानाति । किंतु विधातुरिव तस्य दुर्योधनस्याभिलषितं चेष्टितं मनसि स्थितः संकल्पः प्रभूतसमृद्धिभिरुत्कर्षरूपपैर्माङ्गलिकैः कार्यसिद्धिभिः परिणामैः प्रतीयते । अतो लघुनोपायेन स न वश्य इत्यभिप्रायः ॥२०॥

हिन्दीव्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में सुन्दर गुप्तचर व्यवस्था द्वारा दुर्योधन की मन्त्रणाओं की गोपनीयता तथा शत्रु के रहस्यों का जानना प्रतिपादित किया गया है ।

समस्त कर्त्तव्यों को भलीभाँति सम्पन्न करनेवाला वह दुर्योधन अपने सुन्दर आचरण वाले अर्थात् प्रवञ्चना न करने वाले गुप्तचरों के द्वारा अन्य शत्रु राजाओं की सभी प्रकार की क्रियाओं को पूर्ण रूप से जानता है। किंतु विधाता की तरह उसका अभिलषित अर्थात् मन में स्थित संकल्प प्रभूत समृद्धि वाले माङ्गलिक फल की सिद्धियों, परिणामों के द्वारा ही जाना जाता है ॥२०॥

भावार्थः—दुर्योधन की गुप्तचर व्यवस्था अत्यन्त उत्तम है। उसके संकल्प, विचार शुभ तथा गूढ हैं और वे कार्यरूप में अवश्य ही परिणत होते हैं। इस प्रकार प्रजा की भक्ति प्राप्त होने से उसको पराजित करना सरल नही है।

टिप्पणी :

महीभृताम् = महीं बिभ्रति इति महीभृतः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष।
    मही + √भृ + क्विप् कर्त्तरि।
सच्चरितैः = सत् चरितं येषां ते, सच्चरिताः, तैः। बहुव्रीहि।
    सत् = √अस् + लट् शतृ। चरितम् = √चर् + क्त भावे।
निःशेषम् = निर्गतः शेषः यस्मात् तत् यथा स्यात्तथा। निः + √शिष् + घञ् भावे।
अशेषितक्रियः = (१) न शेषिताः अशेषिताः। नञ् तत्पुरुष। अशेषिताः क्रियाः येन सः अशेषितक्रियः। बहुव्रीहि शेषिता = √शिष् + णिच् + क्त कर्मणि।
    (२) शेषः सञ्जातः आसामिति शेषिताः। न शेषिताः इति
        अशेषिताः। शेष् + इतच्।
चरैः = चरन्तीति चराः, तैः। √चर् + अच्। पचाद्यच्।
महोदयैः = महान् उदयः येषां, येषु, येभ्यः वा तानि महोदयानि, तैः। बहुव्रीहि।
    उदयः = उद् + √इ + अच् भावे।
हितानुबन्धिभिः = हितम् अनुबध्नन्तीति हितानुबन्धीनिः तैः। उपपद तत्पुरुष।
    हित + अनु + √बन्ध् + णिनि कर्तरि ताच्छील्ये।
ईहितम् = √ईह् + क्त।
धातुः = √धा + तृच् = धातृ, षष्ठी एकवचन।
वेद = √विद् + लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

प्रतीयते = प्रति + √इ + लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

कोषः

चरः = चरोऽक्षद्यूतभेदे च भौमे चारे त्रसे चले—इत्यजयः ।

यथार्हवर्णः प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः ।

चारश्च गूढपुरुषश्चाप्टप्रत्ययितौ समौ' इत्यमरः

विधाता = धातब्जयोनिर्द्रुहिणो विरञ्चिः कमलासनः ।

स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड्विधिः ।।' इत्यमरः ।

धाता वेधसि पालके—इत्यजयः ।

अलङ्कारः—अन्य राजाओं के रहस्य ज्ञान में सञ्चरित चर रूप हेतु का कथन होवे से काव्यलिङ्ग अलंकार । उत्तरार्द्ध में काव्यलिङ्ग अनुप्राणित उपमा अलंकार ।

छन्दः—वंशस्थ ।

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ।।२१।।

घण्टापथ—नेति । तेन राज्ञा क्वचित् कुत्रापि । सह ज्यया मौर्व्या सज्यम् । 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः । 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः । धनुः नोद्यतं नोर्ध्वीकृतम् । आननं वा कोपविजिह्मं कोपकुटिलं न कृतम् । यस्य कोप एव नोदेति कुतस्तस्य युद्धप्रसक्तिरिति भावः । कथं तर्ह्याज्ञां कारयति राज्ञ इत्यत्राह-गुणेति । गुणेषु दयादाक्षिण्यादिषु अनुरागेण प्रेम्णा । माल्य-पक्षे सूत्रानुषङ्गेन । यद्वा सौरभ्यगुणलोभेन । नराधिपैरस्य शासनम् आज्ञा । मालैव माल्यं तदिव । 'चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ' इति क्षीरस्वामी । शिरोभिः उह्यते धार्यते । 'वचिस्वपियजादीनां किति' इति यकि सम्प्रसारणम् । अत्रोपमा स्फुटैव ।।२१।।

अन्वयः—तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम् । वा आननं कोपविजिह्मं न कृतम् । नराधिपैः अस्य शासनं गुणानुरागेण माल्यम् इव शिरोभिः उह्यते ।।२१।।

शब्दार्थः—तेन = दुर्योधनेन; उस दुर्योधन के द्वारा । क्वचित् = कुत्रचित् कुत्रापि; किसी पर भी, कहीं भी । सज्यं = सगुणं समौर्वीकं समारोपितमौर्वीकं;

प्रत्यञ्चा से युक्त, चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा वाले, डोरी चढ़ी हुई। धनुः = कोदण्डं चापं; धनुष को। न = नहि; नहीं। उद्यतं = ऊर्ध्वीकृतम् उत्थापितम् उत्तानितं; उठाया गया, प्रयुक्त किया गया। वा = अथवा। आननं = मुखं; मुख को। कोपविजिह्मं = क्रोधकुटिलं विकृतं; क्रोध के कारण कुटिल, विकृत। न = नहि; नहीं। कृतं = विहितं; किया गया। नराधिपैः = नरेन्द्रैः करदैर्नृपतिभिः; कर प्रदान करने वाले, अधीन राजाओं के द्वारा। अस्य = दुर्योधनस्य; इस दुर्योधन की। शासनं = आदेशवचनं; आदेशः; आदेश वचन आज्ञा। गुणानुरागेण = दयादानदाक्षिण्यादिभक्त्या स्नेहेन प्रेम्णा; दया-दान-दाक्षिण्य इत्यादि गुणों के अनुराग, आकर्षण के कारण। माल्यपक्षे। गुणानुरागेण = गुणेषु सूत्रेषु अनुरागेण गुम्फितेन; सूत्रों में गुम्फित, संग्रथित होने के कारण। अथवा। सौरभ्यगुणलोभेन सौगन्धादिष्वनुरागेण; सुरभि, सुगन्ध इत्यादि गुणों में लोभ के कारण। माल्यम् इव = मालेव संग्रथितपुष्पसमूह इव; पुष्प की माला की तरह। शिरोभिः = शीर्षैः मस्तकैः सादरं, शिरों से, मस्तकों द्वारा अर्थात् अतिशय सम्मानपूर्वक। उह्यते = धार्यते; धारण की जाती है, स्वीकार की जाती है ॥२१।

संस्कृतव्याख्या—सद्गुणैः समलंकृतस्य दुर्योधनस्य प्रवृद्धः प्रभावोऽत्र निरूपितः। सर्वे राजानस्तस्य शासनं प्रसन्नतापूर्वकम् अनुगच्छन्ति। तेन राज्ञा दुर्योधनेन कुत्रचिदपि समारोपितमौर्वीकं शरासनं नोत्थापितम् उत्तानितम्। अथवा स्वकीयं मुखं कोपेन विकृतं न कृतम्। तथापि करदनृपतिभिः अस्य दुर्योधनस्यादेशवचनं गुणगरिम्णा दयादानदाक्षिण्यादिभक्त्या स्वमस्तकैः सादरं गुणे सूत्रे संग्रथितेव सुरभिगुणलोभेन वा पुष्पमाला इव धार्यते स्वीक्रियते ॥२१॥

हिन्दी व्याख्या—सुन्दर गुणों से समन्वित दुर्योधन के अतिशय प्रभाव का प्रकाशन प्रस्तुत श्लोक में किया गया है। सभी राजा लोग उसकी आज्ञा का पालन प्रसन्नता तथा आदरपूर्वक करते हैं।

उस दुर्योधन के द्वारा चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा वाला धनुष किसी के ऊपर नहीं उठाया गया, प्रयोग नहीं किया गया अथवा अपने मुखको क्रोध के कारण विकृत नहीं किया गया। (कर प्रदान करने वाले अधीनस्थ) राजाओं के द्वारा अपने मस्तकों से अर्थात् प्रसन्नता तथा आदरपूर्वक सूत्र में संग्रथित होने के कारण

अथवा सुगन्ध के लोभ के कारण पुष्प की माला की तरह उसकी आज्ञा धारण की जाती है ॥२१॥

भावार्थ—दुर्योधन क्रोध की भावना से रहित है। उसकी आज्ञा का पालन सभी लोग उसके गुणों से आकृष्ट होकर करते हैं। अतः सरलतापूर्वक वह पराजित किए जाने योग्य नहीं है।

टिप्पणी :

सज्यम् = ज्यया सह वर्तते यत् तत् सज्यम् अथवा सहज्यम्। बहुव्रीहि 'तेन सहेति तुल्ययोगे' सूत्र से। सह को स आदेश 'वोपसर्जनस्य' से।

कोपविजिह्मम् = कोपेन विजिह्मम् इति। तृतीया तत्पुरुष।

विशेषेण जिह्मं विजिह्मम्। प्रादि तत्पुरुष।

कोपः = √कुप् + घञ् भावे।

गुणानुरागेण = गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः; तेन। सप्तमी तत्पुरुष।

'हेतौ' तृतीया।

नराधिपैः—नराणाम् अधिपाः नराधिपाः, तैः। षष्ठी तत्पुरुष।

अधिपः = अधि + √पा + क।

माल्यम् = माला एव माल्यम्। मा + ष्यञ् स्वार्थे 'चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्

कृतम् = √कृ + क्त।

उद्यतम् = उद् + √यम् + क्त कर्मणि।

आननम् = आ + √अन् + ल्युट्।

शासनम् = √शास् + ल्युट्।

उह्यते = √वह् + लट् (कर्मवाच्य), प्रथम पुरुष, एक वचन।

कोषः

ज्या = 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः'

धनुः = 'धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्'

कोपः = 'कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ'

जिह्मम् = 'अरालं वृजिनं जिह्ममूर्मिमत्कुञ्चितं नतम्।

आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि।'

'जिह्मस्तु कुटिलेऽलसे'

आननम् = 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्'

माल्यम् = 'माल्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि कोषमध्ये तु गर्भकः'—इत्यमरः ।

शासनम् = शासनं राजदत्तोर्व्यां लेखाज्ञाशास्त्रशान्तिषु—इति मेदिनी ।

अलंकारः—धनुष तथा आनन के साभिप्राय विशेषण होने के कारण परिकर 'माल्यमिव' में उपमा । गुणानुरागेण में श्लेष तथा हेतु निर्देश होने से काव्य-लिंग अनुप्राणित उपमा ।

छन्दः—वंशस्थ ।

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं निधाय दुःशासनमिद्धशासनः ।
मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम् ॥२२॥

घण्टापथ—स इति । इद्धशासनः अप्रतिहताज्ञः स दुर्योधनो नवयौवनोद्धतं प्रगल्भम् । धुरन्धरमित्यर्थः । दुःखेन शास्यत इति दुःशासनस्तम् । 'भाषायां शासियुधि०,–इत्यादिना खलर्थे युच्प्रत्ययः यौवराज्ये युवराजकर्मणि । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । निधाय नियुज्येत्यर्थः । पुरोधसा पुरोहितेन अनुमतोऽनुज्ञातः । तस्मिन् याजके सतीत्यर्थः । तदुल्लंघने दोषस्मरणादिति भावः । 'निष्ठा' इति भूतार्थे क्तः । न तु 'गतिबुद्धि०' इत्यादिना वर्तमानार्थे । अन्यथा 'पुरोधसा' इत्यत्र 'क्तस्य च वर्तमाने' इति षष्ठी स्यात् । अखिन्नोऽनलसः । मखेषु क्रतुषु । हव्येन हविषा । हिरण्यं रेतो यस्य तं हिरण्यरेतसम् अनलं धिनोति प्रीणयति । धिन्वेः प्रीणनार्थाद् 'धिन्विकृण्व्योर च' इत्युप्रत्ययः । अकारश्चान्तादेशः ॥२२॥

अन्वयः—इद्धशासनः सः नवयौवनोद्धतं दुःशासनं यौवराज्ये निधाय पुरोधसा अनुमतः अखिन्नः (सन्) मखेषु हव्येन हिरण्यरेतसं धिनोति ॥१२॥

शब्दार्थः—इद्धशासनः = प्रज्वलितशासनः उग्र शासनः अप्रतिहताज्ञः; प्रज्वलित शासन वाला, अप्रतिहत, अनतिक्रमणीय आज्ञा वाला । सः = दुर्योधनः, नवयौवनोद्धतं = अभिनवतारुण्यप्रगल्भं; नवीन यौवनावस्था के कारण प्रगल्भ, गर्वयुक्त । दुःशासनं = एतन्नामानं स्वानुजं स्वकनीयसं; अनुज दुशासन को । यौवराज्ये = युवराजाधिकारे युवराजपदे युवराजकर्मणि; युवराज के पद पर, कार्य में । निधाय =

नियुज्य संस्थाप्य युवराजं कृत्वा; नियुक्त करके, स्थापित करके, युवराज बना करके। पुरोधसा = पुरोहितेन धौम्येन; पुरोहित के द्वारा। अनुमतः = अनुज्ञातः आज्ञप्तः आदिष्टः; अनुमति प्राप्त करके, आदेश पाया हुआ। अखिन्नः (सन्) = अनलसः आलस्यरहितः सन्; आलस्यहीन होकर, आलस्यरहित हुआ। मखेषु = यज्ञेषु क्रतुषु; यज्ञों में आज्य-चरु-पुरोडाश इत्यादि हवनीय द्रव्यों के द्वारा। हिरण्यरेतसं = अग्निं, पावकं; अग्नि को। धिनोति = प्रीणयति तर्पयति प्रसादयति; तृप्त करता है, प्रसन्न करता है ॥२२॥

संस्कृतव्याख्या—दुर्योधनस्य धर्माचरणं निरूपितमत्र।

प्रज्वलितशासनः अप्रतिहतादेशः स दुर्योधनोऽभिनवतारुण्यप्रगल्भं दुःशासनं स्वानुजं युवराजपदे संस्थाप्य स्वयं तु पुरोहितेनानुज्ञातोऽनलसः सन् यज्ञेष्वग्निम् आज्यचरुपुरोडाशादिना हवनीयद्रव्येण प्रीणयति निरन्तरं जुहोति ॥२२॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन के धर्माचरण का निरूपण किया गया है।

अनतिक्रमणीय आज्ञा वाला वह दुर्योधन अभिनव युवावस्था के कारण प्रगल्भ, अति अभिमानी दुःशासन नामक अपने अनुजको युवराज पद पर आसीन करके स्वयं पुरोहित द्वारा अनुमति प्राप्त करके आलस्यरहित होकर यज्ञों में अग्नि को आज्य-चरु-पुरोडाश इत्यादि हवनीय द्रव्यों के द्वारा प्रसन्न कर रहा है ॥ २२ ॥

भावार्थ—यज्ञ इत्यादि धार्मिक आचरणों द्वारा वह दुर्योधन प्रजाजनों के अनुराग को प्राप्त कर रहा है।

टिप्पणी :

यौवराज्ये = युवा चासौ राजा च युवराजः। कर्मधारय। राजन् + टच्।
'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से टच् प्रत्यय। युवराजस्य कर्म यौवराज्यं, तस्मिन्।
युवराज + ष्यञ् = यौवराज्यम।
'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' से ष्यञ्।

नवयौवनोद्धतम् = यूनो भावो यौवनम्। नवं यौवनं नवयौवनम्। कर्मधारय।
नवयौवनेन उद्धतः नवयौवनोद्धतस्तम्। तृतीया तत्पुरुष।

यौवनम् = युवन् + अण् । उद्धतम् = उद् + √हन् + क्त कर्त्तरि ।
दुःशासनम् = दुःखेन शास्यते इति । दुर् + √शास् + युच् कर्मणि । तम ।
इद्धशासनः = इद्धं शासनं यस्य सः । बहुव्रीहि ।

√इन्ध् + क्त कर्त्तरि । √शास् + ल्युट् भावे ।

अखिन्नः = न खिन्नः अखिन्नः । नञ् तत्पुरुष । √खिद् + क्त ।
हिरण्यरेतसं = हिरण्यं रेतो यस्य स हिरण्यरेता, तम् । बहुव्रीहि ।
हव्येन = हूयते यत् तत् हव्यम् । √हु + यत् । 'अचो यत्' ।
पुरोधस् = पुरस् + √धा + असुन् ।
अनुमतः = अनु + √मन् + क्त ।
निधाय = नि + √धा + क्त्वा—ल्यप् ।
धिनोति = √धिन्व् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन ।

कोष :

युवराजः = 'जनको युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः'
मखः = 'यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः'
पुरोधस् = 'पुरोधास्तु पुरोहितः'
यौवनम् = 'तारुण्यं यौवनं समे'—इत्यमरः ।
हिरण्यरेतस् = 'हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः'—इत्यमरः ।
शासनम् = शासनं राजदत्तोर्व्यां लेखाऽऽज्ञाशास्त्रशान्तिषु—इति मेदिनी ।

अलंकारः—व्यञ्जनों की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास । हिरण्यरेतस् की प्रसन्नता में अनुमतिरूप हेतुनिर्देश होने से काव्यलिङ्ग अलंकार ।

छन्दः—वंशस्थ ।

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतीरहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ॥२३॥

घण्टापथ—प्रलीनेति । स दुर्योधनः प्रलीनभूपालम् । निःसपत्नमित्यर्थः । स्थिरायति चिरस्थायीत्यर्थः भुवो मण्डलम् । आ वारिधिभ्यः आवारिधि । 'आङ्मर्यादाऽभिविध्योः' इति अव्ययीभावः । प्रशासद् आज्ञापयन्नपि । 'जक्षित्यादयः षट्' इत्यभ्यस्तसंज्ञा । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमागमप्रतिषेधः ।

त्वत्त्वत्तः एष्यतीरागमिष्यतीः । धातूनामनेकार्थत्वादुक्तार्थसिद्धिः । अथवाऽऽङ्पूर्वकं पाठः । 'एत्येधत्यूठ्सु' इति वृद्धिः । 'लृटः सद्वा' इति शतृप्रत्ययः । 'उगितश्च' इति ङीप् । 'आच्छीनद्योर्नुम्' इति विकल्पान्नुमभावः । भियो भयहेतून् । विपद इत्यर्थः । चिन्तयति आलोचयत्येव । स एवाह—अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता दुष्टावसाना । सार्वभौमस्यापि प्रबलैः सह वैरायमाणत्वमनर्थपर्यवसाय्येवेति तात्पर्यम् । सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ॥२३॥

अन्वय—सः प्रलीनभूपालं स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलं प्रशासत् अपि त्वत् एष्यतीः भियः चिन्तयति एव । अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता (भवति) ॥२३॥

शब्दार्थः—सः = दुर्योधनः; वह दुर्योधन । प्रलीनभूपालं = प्रनष्टमहीपं निःसपत्नं, विलीन हो गए, नष्ट हो गए राजाओं वाला, विरोधी शत्रु राजाओं से सर्वथा रहित । स्थिरायति = चिरस्थायि स्थिरोत्तरकालं सदा वर्त्तमानं स्थायि, स्थिर भविष्यकाल वाला, सदा विद्यमान रहनेवाला । आवारिधि = आसमुद्रं समुद्रपर्यन्तं; समुद्र तक । भुवः = भूमेः पृथिव्याः; भूमि, पृथिवी का । मण्डलं = खण्डं वलयं; खण्ड, वलय का । प्रशासत् अपि = आज्ञापयन् शासनं कुर्वन्नपि; शासन करता हुआ भी, शासन करते रहने पर भी । त्वत् = त्वत्तः भवतः युधिष्ठिरसकाशात्; तुम्हारे पास से आप युधिष्ठिर से । एष्यतीः = आगमिष्यती, आगामिनीः; आनेवाली, उत्पन्न होने वाली । भियः = साध्वसानि आपत्तीः विपदः विपत्तियों, आपदाओं का । चिन्तयति एव = आलोचयति विचारयति एव; चिन्तन, विचार करता ही है अर्थात् सदा भयमनुभवत्येव, सदा भय का अनुभव करता ही रहता है । अहो = खेदे आश्चर्ये; दुःख है, आश्चर्य है । बलवद्विरोधिता = महाजनवैरिता प्रबलैः पराक्रमशीलैः सह शत्रुता द्वेषिता, बलवानों के साथ, पराक्रमी व्यक्तियों के साथ विरोध, द्वेष, शत्रुता । दुरन्ता = दुरवसाना परितप्तपरिणामा दुःखपूर्णपरिणामा भवति; दुःख में अन्त होने वाला, दुःखमय परिणाम वाला होता है ॥२३॥

संस्कृतव्याख्या—यद्यपि सपत्नरहितस्य भूमण्डलस्य स दुर्योधनोऽद्वितीयः शासकस्तथापि युधिष्ठिरात्पराजयं विशङ्कमानो बिभेति ।

विलीनमहीपं निःसपत्नं चिरस्थायि स्थिरोत्तरकालं समुद्रपर्यन्तं पृथिव्या वलयम् आज्ञापयन् शासनं कुर्वन्नपि भवतो राज्ञो युधिष्ठिरसकाशाद् आगामिष्यन्तीरापत्तीरालोचयत्येव अर्थात् भवतो भयमनुभवत्येव। अहो महदाश्चर्यं विद्यते प्रबलैः पराक्रमशीलैः सह विद्वेषिता दुरवसाना परितप्तपरिणामा भवति ॥२३॥

हिन्दी व्याख्या—यद्यपि दुर्योधन शत्रुरहित समस्त भूमण्डल का अद्वितीय शासक है तथापि युधिष्ठिर से पराजय की आशंका करता हुआ वह भयभीत हो रहा है।

वह दुर्योधन विलीन हो गए राजाओं वाले अर्थात् विरोधी शत्रु राजाओं से सर्वथारहित स्थायी स्थिर भविष्यवाले समुद्र तक फैले हुए पृथिवी मण्डल का शासन करते रहने पर भी आप युधिष्ठिर से आने वाली, उत्पन्न होने वाली विपत्तियों का चिन्तन करता ही रहता है अर्थात् सदैव भयभीत रहता है। अहो, प्रबल पराक्रमी शत्रु के साथ होने वाला विद्वेष दुःखमय परिणाम वाला होता है ॥२३।

भावार्थ—दुर्योधन को पराजित किया जाना सम्भव है, यही किरात के कथन का अभिप्राय है।

टिप्पणी :

प्रलीनभूपालम् = भुवं पालयन्तीति भूपालाः। उपपद।

प्रलीनाः भूपालाः यस्मिस्तत् प्रलीनभूपालम्, तत्। बहुव्रीहि।

प्रलीनाः = प्र + √ली + क्त कर्त्तरि। भूपालाः = भू + √पाल् + अण्।

स्थिरायति = स्थिरा आयतिः यस्य, तत्। बहुव्रीहि। आ + √यम् + क्तिन्।

आवारिधि = वारि धीयतेऽस्मिन्निति वारिधिः। वारिधिभ्यः आ इति आवारिधि। अव्ययीभाव।

'आङ्मर्यादाभिविध्योः'। वारि + √धा + कि।

दुरन्ता = दुः अन्तः यस्याः सा दुरन्ता। बहुव्रीहि।

बलवद्विरोधिता = बलमस्यास्तीति बलवान्। विरुणद्धि इति विरोधी। विरोधिनो भावः विरोधिता।

बलवता विरोधिता बलवद्विरोधिता। सुप्सुपा। बलवान् = बल + मतुप् + सु।

विरोधी = वि + √रुध् + णिनि कर्त्तरि । विरोधिता = विरोधिन् + तल् टाप् ।

प्रशासत् = प्र + √शास् + लट् शतृ, प्रथमा एकवचन ।

एष्यतीः = √इ + लृट् शतृ, प्रथमा एकवचन ।

एष्यतीः = √इ + लृट् शतृ, द्वितीया बहुवचन ।

चिन्तयति = √चिन्त् + णिच् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

कोष :

आयतिः = 'उत्तरः काल आयतिः' 'दैर्घ्ये भाविकाले च आयतिः' इति

मण्डलम् = 'मण्डलं त्रिषु'

भीः = 'भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' । इत्यमरः ।

वारिधिः = 'उदधिर्वारिधिः सिन्धुः सागरश्च सरित्पतिः'—इति

अहो = 'अहो खेदे आश्चर्ये च' इति ।

अलंकार :—'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' सामान्य कथन द्वारा पूर्ववर्ती विशेष कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार; छेकानुप्रास ।

छन्द : वंशस्थ ।

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।
तवाभिधानाद्व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥२४॥

घण्टापथ—कथेति । कथाप्रसंगेन गोष्ठीवचनेन जनैः तत्रस्थैरित्यर्थः । अन्यत्र कथाप्रसंगेन विषवैद्येन । 'कथाप्रसङ्गो वार्तायां विषवैद्येऽपि वाच्यवत्' इति विश्वः । एकवचनस्यातन्त्रत्वाज्जनविशेषणम् । उदाहृतादुच्चारितात्तवाभिधानान्नामधेयात्स्मारकाद्धेतोः । 'हेतौ' इति पञ्चमी । 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः । अन्यत्र तवाभिधानात् । 'नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम्' इति न्यायात् । तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी तयोरभिधानं यस्मिन् पदे तस्मात् । यद्वा कथाप्रसंगे इनाश्च ते जनाश्चेत्येकं पदम् । अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः स्मृतार्जुनपराक्रमः सन् दुःसहादतिदुःसहान्मन्त्रपदान्मन्त्रशब्दात् स्मारकाद्धेतोः । आखण्डलसूनुरिन्द्रानुजः । उपेन्द्रो विष्णुरिति यावत् । 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ' इति विश्वः । तस्य विः पक्षी गरुड इत्यर्थः । तस्य क्रमः

पादविक्षेप। सोऽनुस्मृती वेन स तथोक्तः। स्मृतगरुडमहिमा। उरग इव नताननः सन्। व्यथते दुःखायते। 'पीडा बाधा व्यथा दुःखम्' इत्यमरः। अत्युत्कटभयदोषादिविकारा दुर्वारा इति भावः। 'सर्वतो जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' इति न्यायादर्जुनोत्कपकथनं युधिष्ठिरस्य भूषणमेवेति सर्वमवदातम् ॥२४॥

अन्वयः—कथाप्रसंगेनजनैः उदाहृतात् दुःसहात् तवाभिधानात् मन्त्रपदात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नताननः उरगः इव कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् दुःसहात् तव अभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः वः नताननः (सन्) व्यथते ॥२४॥

शब्दार्थः—कथाप्रसंगेनजनैः = विषवैद्यप्रवरलोकैः विषविद्याप्रयोगकुशलैः जनैः, कथाप्रसंगेषु इनाः श्रेष्ठाः कथाप्रसंगेनाः जनाः तैः अथवा कथायां प्रसंगः यस्य स कथाप्रसंगः विषवैद्यः तेन; विषवैद्यों में श्रेष्ठ मनुष्यों के द्वारा, विषविद्या के प्रयोग में कुशल मनुष्यों के द्वारा। उदाहृतात् = उच्चारितात् सकीर्तितात्; उच्चरित, उच्चारण किए गए। दुःसहात् = अति दुःश्राव्यात् नितरां सोढुमशक्यात्; अत्यन्त असह्य, असहनीय। तवाभिधानात् = तार्क्ष्यवासुकिनामकथनात्, तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी, तवयोः अभिधानं यस्मिस्तत्, तार्क्ष्यवासुकिनामसमन्वितात्, तार्क्ष्य तथा वासुकि के नाम से युक्त। मन्त्रपदात् = मन्त्रशब्दात् विषदूरीकरणमन्त्रविशेषात् विषहरणप्रयोगात्; मन्त्र के पद से, विष दूर करने वाले मन्त्र विशेष से। अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = स्मृतविष्णुपक्षिपदवेगः स्मृतोपेन्द्रपक्षिगरुडाख्यपादविक्षेपः प्रहारः अनुस्मृतविष्णुवाहनगरुडपराक्रमः; आखण्डलस्य सूनुः, तस्य विः, तस्य क्रमः, आखण्डलसूनुविक्रमः, अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः; इन्द्र के अनुज विष्णु के पक्षी वाहन गरुड के पादविक्षेप, प्रहार का स्मरण करने वाले, स्मरण कर लिया है गरुड के पदप्रहार का जिसने। नताननः = नम्रमुखः विनताननः विनम्रफणः; मुख को, फण को नीचे किए हुए। उरगः इव = सर्पः इव भोगीव; सर्प की तरह। कथाप्रसंगेन = गोष्ठीवचनेन वार्ताऽनुक्रमेण परस्परालापप्रसंगेन कथायाः प्रसङ्गः कथाप्रसङ्गः, तेन; विचार गोष्ठी में, परस्पर वार्तालाप के प्रसंग, क्रम में। जनैः = लोकैः तत्रस्थैः

राजपुरुषैः, मनुष्यों के द्वारा, वहाँ पर उपस्थित राजपुरुषों के द्वारा। उदाहृतात् – उच्चारितात्; उच्चारण किए गए। दुःसहात् = अतिदुःश्राव्यात् असह्यात् सहनायोग्यात; अत्यन्त असह्य। तव = भवतः राज्ञो युधिष्ठिरस्य; आप राजा युधिष्ठिर का, अभिधानात् = नाम्नः हेतोः नामधेयात्; नाम ग्रहण कर लेने से। अनुस्मृतमहेन्द्रतनयधनञ्जयपराक्रमः, आखण्ठलस्य सूनुः, तस्य विक्रमः, आखण्डलसूनुविक्रमः; अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः; इन्द्र के पुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करने वाला, स्मरण कर लिया है अर्जुन के पराक्रम को जिसने। सः = सिंहासनारूढः; स दुर्योधनः सिंहासनारूढ़ वह दुर्योधन। नताननः (सन्) = अवनतमुखः अधोवदनः सन्; मुख को नीचे किए हुए, सिर को नीचे झुकाए हुए। व्यथते = दुःखायते नितरां पीडामनुभवति दुःखं प्राप्नोति; व्यथित होता है, अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करता है ॥२४॥

संस्कृत व्याख्या—दुर्योधनस्य भीतिरत्र निरूपिता। राज्याधिरूढोऽपि सोऽर्जुनस्य पराक्रमात्स्वपराजयं विशङ्कमानो विभेति।

विषवैद्यप्रवरलोकैः संकीर्तितान्नितरां सोढुमशक्यात् तार्क्ष्यवासुकिनामसमन्वितात् विषदूरीकरणमन्त्रविशेषात् स्मृतोपेन्द्रपक्षिगरुडपादविक्षेपः प्रहारो विनम्रफणो भोगीव परस्परालापप्रसङ्गेन वार्ताऽनुक्रमेण तत्रत्यैः राजपुरुषैरुच्चारितादतिदुःश्राव्याद् भवतः राज्ञो युधिष्ठिरस्य नामधेयाद् अनुचिन्तितमहेन्द्रतनयधनञ्जयपराक्रमः स राज्याधिरूढो दुर्योधनोऽवगतमुखः सन् दुःखायते नितरां पीडामनुभवति। अतः स वश्य इति भावः ॥२४॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन के भय का निरूपण किया गया है। राज्याधिरूढ़ होने पर भी अर्जुन के पराक्रम से अपनी पराजय की आशंका करता हुआ वह भयभीत हो रहा है। विषवैद्यों में श्रेष्ठ मनुष्यों के द्वारा उच्चारण किए गए अत्यन्त असहनीय तार्क्ष्य तथा वासुकि के नाम से युक्त विष को दूर करने वाले मन्त्र विशेष से इन्द्र के अनुज विष्णु के पक्षी गरुड़ के पादविक्षेप, प्रहार का स्मरण करने वाले, फण को नीचे किए हुए सर्प की तरह परस्पर वार्तालाप के प्रसंग में वहाँ पर उपस्थित राजपुरुषों के द्वारा उच्चारण किए गए अत्यन्त कटु आप राजा युधिष्ठिर के नाम से इन्द्र के पुत्र अर्जुन के

पराक्रम का स्मरण करने वाला सिंहासनारूढ़ वह राजा दुर्योधन मुख को नीचे किए हुए अर्थात् पराजय की चिन्ता से सिर को नीचे झुकाए हुए अत्यधिक व्यथित होता है ॥२४॥

विशेष:—'सर्वतो जयमन्विच्छेत्पुत्रादिच्छेत्पराजयम्' इस न्याय से युधिष्ठिर के समक्ष अर्जुन के उत्कर्ष का वर्णन उचित ही है।

भावार्थ– सर्वशक्तिसम्पन्न, सिंहासनारूढ़ होने पर भी दुर्योधन को पराजित किया जा सकता है, यही किरात के कहने का अभिप्राय है।

टिप्पणी :

कथाप्रसङ्गेनजनैः = (उरगपक्षे) (१) कथाप्रसंगेषु विषवैद्येषु इनाः श्रेष्ठाः इति कथाप्रसंगेनाः, सप्तमी तत्पुरुष। कथाप्रसंगेनाः ते च जनाः च इति कथाप्रसंगेनजनाः, तैः। कर्मधारय।

(२) कथायां प्रसंगः यस्य स कथाप्रसंगः विषवैद्यः, तेन कथाप्रसंगेन। बहुीव्रहि।

(दुर्योधनपक्षे) कथायाः प्रसंगः कथाप्रसङ्गः, तेन। षष्ठी तत्पुरुष। करणे तृतीया। प्रसंगः = प्र + √सञ्ज + घञ् भावे।

अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = (उरगपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः अखण्डलसूनुः षष्ठी तत्पुरुष। तस्य विः अखण्डलसूनुविः षष्ठीतत्पुरुष। तस्य क्रमः आखण्डलसूनुविक्रमः षष्ठीतत्पुरुष। अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि।

(दुर्योधनपक्षे) आ सम्यक् खण्डयति पर्वतान् यः स आखण्डलः आखण्डलस्य-सूनुः अखण्डलसूनुः। षष्ठीतत्पुरुष। आखण्डलसूनोः विक्रमः आखण्डल सूनु विक्रमः। षष्ठी तत्पुरुष। अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि।

अनुस्मृतः = अनु + √स्मृ + क्त। क्रमः = √ + क्रम् + घञ् भावे।
आखण्डलः = आ + √खण्ड् + डलच्। विक्रमः = वि + √क्रम् = घञ्

भावे। तवाभिधानात = तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी। द्वन्द्व समास। 'नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम्' इति

तवयोः अभिधानं यस्मिस्तत् तवाभिधानम्। तस्मात्। बहुव्रीहि।

अभिधानम् = अभि + √धा + ल्युट् करणे।

नताननः = नतम् आननं यस्य सः। बहुव्रीहि। नतम् = √नम् + क्त।

दुःसहात् = दुःखेन सह्यते इति दुःसहम्। तस्मात्। तृतीया तत्पुरुष।

दुर् + √सह् + खल् कर्मणि।

मन्त्रपदात् = मन्त्रस्य पद मन्त्रपदं, तस्मात्। षष्ठी तत्पुरुष।

उरगः = उरसा गच्छतीति उरगः। उपपद। उरस + √गम् + ड कर्त्तरि।

'उरसो लोपश्च' से स् का लोप।

उदाहृतात् = उद् + आ + √हृ + क्त कर्मणि। तस्मात्।

व्यथते = √व्यथ् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन।

कोष—

कथाप्रसंगः = कथाप्रसंगो वार्त्तायां विषवैद्येऽपि वाच्यवत्—इति विश्वः।

इनः = इनः प्रभौ नृपे सूर्ये—इति विश्वः।

आखण्डलः = आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षास्तस्य तु प्रिया—इत्यमरः।

सूनुः = सुनुः पुत्रेऽनुजे रवौ—इति विश्वः।

अभिधानम् = आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च—इत्यमरः।

विक्रमः = विक्रमः पादविक्षेपे सामर्थ्येपि च कथ्यते—इति

आननम् = आस्यं मुखं तु वदनमाननं वक्त्रमित्यपि—इति

उरगः = उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः—इत्यमरः।

व्यथा = पीडा बाधा व्यथा दुःखम्—इत्यमरः

अलंकार—श्लेष अनुप्राणित उपमा अलंकार।

छन्द—वंशस्थ।

तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ॥२५॥

घण्टापथ—तदिति। तत् तस्मात् त्वयि जिह्मं कपटं कर्तुमुद्यते त्वां

जिघांसावित्यर्थः । तत्र तस्मिन् दुर्योधने विधेयं कर्तव्यम् उत्तरम् प्रतिक्रिया आशु विधीयतां क्रियताम् । ननु कर्तव्यमपि त्वयैवोच्यतामिति केत्तत्राह— परेति । परप्रणीतानि परोक्तानि । वचांसि चिन्वतां गवेषयतां मादृशां वार्ताहारिणामित्यर्थः । गिरः प्रवृत्तिसाराः वार्तामात्रसाराः खलु । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः । वार्तामात्रवादिनो वयं, न तु कर्तव्योपदेशसमर्थाः । अतस्त्वयैव निर्धार्य कार्यमिति भावः । सामान्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तर-न्यासः ॥२५॥

अन्यवयः—तत् त्वयि जिह्मं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम् । परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु ॥२५॥

शब्दार्थः— तत् = तस्मात्कारणात्; उस कारण से, इसलिए । त्वयि = भवति राज्ञि युधिष्ठरे; आप राजा युधिष्ठिर के प्रति । जिह्मं = कपटं; कपट, कुटिलता को । कर्तुं + विधातुं; करने के लिए । उद्यते = तत्परे प्रवृत्ते; तत्पर, प्रवृत्त रहने वाले, प्रयास करने वाले अर्थात् त्वां हन्तुमिच्छति सति; विनाश के लिए तत्पर रहने वाले । तत्र = तस्मिन् दुदर्योधने; उस दुर्योधन के प्रति । विधेयं = कर्त्तव्यं करणीयं कर्तुं योग्यं; करने के योग्य उचित । उत्तरं = प्रतिक्रिया प्रतीकारः उपायः, प्रतीकार, उपाय । आशु = शीघ्रं; शीघ्र ही । विधीयतां = क्रियतां; करना चाहिए । परप्रणीतानि = परोक्तानि अन्यकथितानि उदितानि; दूसरों के द्वारा कहे गए । वचांसि = वचनानि कथनानि; वचनों का । चिन्वतां = गवेषयताम् अन्वेषयतां मृगयताम् एकत्रीकुर्वतां; संकलन, चयन, एकत्र करने वाले । मादृशां = मया सदृशानाम् अस्मद्विधानां वचनेचराणां दूतानां वार्ता-हारिणां; हमारे जैसे वनेचरों के, सन्देश हरण करने वाले दूतों के । गिरः = वाण्यः वाचः; वचन कथन । प्रवृत्तिसाराः खलुः = वार्तामात्रसाराः वृत्तान्त-प्रधानाः केवलं; निश्चयेन । केवल समाचार, वृत्तान्त का सार, सारांश । (भवन्ति = होते हैं २५॥

संस्कृत व्याख्या—अत्र किरातः सन्देशं संक्षिपति । यथार्थकथनमेव दूतानां प्रयोजनम् । तत्र विधेयं तु स्वामिनः कर्त्तव्यम् ।

तस्मात्कारणाद् भवति राज्ञि युधिष्ठिरे कपटं कर्तुं प्रवृत्ते अर्थात् त्वां हन्तुमिच्छति सति तस्मिन् दुर्योधने करणीय उपायः शीघ्रं क्रियताम्। यतः परोक्तानि वचनानि अन्वेषयताम् एकत्रीकुर्वताम् अस्मद्विधानां वार्ताहारिणां दूतानां वाचः निश्चयेन वृत्तान्तप्रधाना भवन्ति अर्थात् मादृशाः अल्पबुद्धयो दूताः केवलं वार्तामात्राभिज्ञा भवन्ति न तु कार्याभिज्ञाः। अतो भवता विचार्य समुचितं कर्म करणीयम् ॥२५॥

हिन्दी व्याख्या:—यथार्थ कथन ही दूतों का प्रयोजन है। उसके आधार पर उचित कार्य राजा को करना चाहिए, इस प्रकार प्रस्तुत श्लोक में किरात अपने सन्देश का सारांश कहता है।

इसलिए आप युधिष्ठिर के प्रति कुटिलता करने के लिए सदैव तत्पर रहने वाले अर्थात् आपके विनाश के लिए प्रयास करने वाले उस दुर्योधन के प्रति करने योग्य उचित प्रतीकार को शीघ्र ही आपको करना चाहिए। क्योंकि दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों का संकलन करने वाले हमारे जैसे वनेचरों, दूतों के वचन निश्चितरूप से केवल समाचार के सारांश होते हैं अर्थात् अल्पबुद्धि वाले हम दूत लोग केवल परपक्ष के समाचार से ही परिचित होते हैं, उस समाचार आधार पर करणीय प्रतीकार से नहीं। अतः विचारपूर्वक आप युधिष्ठिर द्वारा उचित कार्य किया जाना चाहिए ॥२५॥

टिप्पणी :

उद्यते = उद् + √यम् + क्त कर्त्तरि। तस्मिन्।

विधेयम् = वि + √धा + यत् कर्मणि।

विधीयताम् = वि + √धा + आज्ञालोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन।

उत्तरम् = अतिशयेन उत् इति उत्तरम् = उत् + तरप् अथवा उद् + √तॄ + अप् करणे।

परप्रणीतानि = परैः प्रणीतानि इति। तृतीया तत्पुरुष।

प्र + √नी + क्त कर्मणि।

प्रवृत्तिसाराः = प्रवृत्तिः सारः यासां, ताः। बहुव्रीहि।

प्रवृत्तिः = प्र + √वृत् + क्तिन् भावे। सारः = √सृ + घञ् भावे।

मादृशाम् = मामिव पश्यन्ति जनाः यान्, ते मादृशाः, तेषाम् ।

अथवा अहमिव दृश्यन्ते ये ते मादृशाः, तेषाम् । उपपद तत्पुरुष ।

अस्मद् + √दृश् + कञ् कर्मकर्त्तरि । मादृशाः ।

चिन्वताम् = √चि + लट् शतृ । षष्ठी बहुवचन ।

कोष :

जिह्मः = जिह्मस्तु कुटिलेऽलसे—इत्यमरः

तत् = यत्तद्यतस्ततो हेतौ—इत्यमरः

आशु = सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च—इत्यमरः

विधेयम् = युक्तं विधेयं समयोचितं च परिकीर्तितम्—इति

उत्तरम् = प्रतिवाक्योत्तरे समे—इत्यमरः

प्रवृत्तिः = वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यादथाऽह्वयः—इत्यमरः

प्रवृत्तिर्वृत्तौ वृत्तान्ते प्रवाहे च प्रवर्त्तने—इत्यजयः

सारः = सारो बले स्थिरांशे च—इत्यमरः

प्रणातम् = प्रणीतमुपसम्पन्ने कृते क्षिप्ते प्रवेशिते संस्कृताग्नौ च—इति हैमः

गोः = ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती—इत्यमरः

अलंकार—सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

छन्द—वंशस्थ ।

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम् ।

प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः ॥२६॥

घण्टापथ—इतीति । वनसन्निवासिनां पत्यौ वनेचराधिप इति गिरम् ईरयित्वोक्त्वा आत्तसत्क्रिये गृहीतपारितोषिके गते याते सति । तुष्टिदानमेव चाराणां हि वेतनम् । ते हि तल्लोभात्स्वामिकार्येष्वतीव त्वरयन्ते इति नीतिवाक्यामृते । अथ महीभुजा राज्ञा कृष्णासदनं द्रौपदीभवनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तत् वनेचरोक्तं वचो वाक्यम् आचचक्षे आख्यातम् । अथवा कृष्णेति पदच्छेदः । सदनं प्रविश्यानुजसन्निधौ तद्वचः कृष्णाऽऽचचक्षे आख्याता । चक्षिङो दुहादेर्द्विकर्मकत्वादप्रधाने कर्मणि लिट् ॥२६॥

अन्वयः—वनसन्निवासिनां पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते

(सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद् वचः आचचक्षे अथवा महीभुजा सदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद् वचः कृष्णा आचचक्षे ॥२६॥

शब्दार्थः—वनसन्निवासिनां = वनवासिनां वनेचराणां; वनवासियों, किरातों के। पत्यौ = अधिपे स्वामिनि; स्वामि के। इति = इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण एवं रूपेण; इस प्रकार। गिरं = वचनं वाणीं; वचन सन्देश के। ईरयित्वा = कथयित्वा निवेद्य; कह करके, निवेदन करके। आत्तसत्क्रिये = गृहीतपारतोषिके प्राप्तपुरस्कारे पारतोषिक, पुरस्कार प्राप्त करने वाले के। गते (सति) = प्रयाते स्वगृहं प्रस्थिते सति; अपने गृह, निवासस्थान को प्रस्थान कर जाने पर, चले जाने पर। अथ = ततः तदनन्तरं तद्गमनान्तरं; उसके बाद, उस बनेचर किरात के चले जाने के अनन्तर। महीभुजा = भूपतिना राज्ञा युधिष्ठिरेण; राजा युधिष्ठिर के द्वारा। कृष्णासदनं = द्रौपदीभवनं; द्रौपदी के भवन में। प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा; प्रवेश करके अनुजसन्निधौ = भीमसेनार्जुनादिकनिष्ठभ्रातृसमीपे स्वभ्रातृसमक्षे अन्तिके; भीमसेन-अर्जुन इत्यादि अपने कनिष्ठ भाइयों के समीप, सामने। तद् = पूर्वोक्तं वनेचरेणोक्तं = वह, वनेचर द्वारा कहा गया। वचः = वचनं सन्देश; वचन, संदेश। आचचक्षे = कथितम् आख्यातं; कहा गया। अथवा। महीभुजा सदनं प्रविश्य = राजा युधिष्ठिरेण भवनं प्रविश्य; राजा युधिष्ठिर के द्वारा भवन में प्रवेश करके। अनुजसन्निधौ तद् वचः = भाइयों के सामने वह वचन। कृष्णा आचचक्षे = कृष्णा आख्याता कथिता; द्रौपदी से कहा गया। अर्थात् युधिष्ठिरो वनेचरेण कथितं तद् वचनं भ्रातॄणां पुरतः द्रौपदीमकथयत्; युधिष्ठिर ने किरात द्वारा कहे गए उस वचन को भाइयों के सामने द्रौपदी से कहा ॥२६॥

संस्कृतव्याख्या—वनेचरं पुरस्कृत्य तेन कथितस्य यथार्थवचनस्य विचार-विमर्शार्थं युधिष्ठरो द्रौपदीं स्वभ्रातॄन् च तत्कथयति।

वनेचाराणामधिपे वचनमित्थं युधिष्ठिराय निवेद्य गृहीतपारतोषिके तस्मिन् स्वगृहं प्रस्थिते सति तदनन्तरं भूपतिना राज्ञा युधिष्ठिरेण द्रौपदीभवनं प्रविश्य भीमसेनार्जुनादिकनिष्ठभ्रातृसमीपे पूर्वोक्तं वनेचरेणोक्तं तद्वचनमाख्यातम्। अथवा राज्ञा युधिष्ठिरेण भवनं प्रविश्य स्वभ्रातॄणां पुरतस्तद्वचनं कृष्णा आख्याता, युधिष्ठिरः कृष्णां तदकथयदित्यर्थः ॥२६॥

हिन्दी व्याख्या —वनेचर को पुरस्कृत करके उसके द्वारा कहे गये यथार्थ कथन पर विचारविमर्श करने के लिए युधिष्ठिर उस वचन को द्रौपदी तथा भाइयों से कहते हैं ।

किरातों के स्वामी के इस प्रकार के सन्देश का निवेदन करके, पुरस्कार प्राप्त कर अपने निवास स्थान को प्रस्थान कर जाने के अनन्तर राजा युधिष्ठिर के द्वारा द्रौपदी के भवन में प्रवेश करके भीमसेन-अर्जुन इत्यादि भाइयों के सामने वनेचर किरात द्वारा कहा गया वह वचन कहा गया अथवा भवन में प्रवेश करके भाइयों के सामने द्रौपदी से वह वचन कहा गया ।।२६||

टिप्पणी :

आत्तसत्क्रिये = सदसती चादरानादरयोः । सत् आदरः तस्य क्रिया इति सत्क्रिया ।
आत्ता सत्क्रिया येन स आत्तसत्क्रियः । तस्मिन् । बहुव्रीहि ।
आत्ता = आ + √दा + क्त कर्मणि स्त्रियाम् ।
सत्क्रिया = सत् + √कृ + श भावे ।

वनसन्निवासिनाम् = वने सन्निवसन्तीति वनसन्निवासिनः, तेषाम् । उपपद तत्पुरुषः । वन + सम् + नि + √वस् + णिनि कर्त्तरि ।

अनुजसन्निधौ = अनु पश्चात् जायन्ते ये ते अनुजाः । उपपद तत्पुरुष । अनुजानां सन्निधिः अनुजसन्निधिः, तस्मिन् । षष्ठीतत्पुरुषः ।
अनुजः = अनु + √जन् + ड कर्त्तरि ।
सन्निधिः = सन् + नि + √धा + किः ।

महीभुजा = महीं भुनक्ति इति महीभुक्, तेन । उपपद तत्पुरुष ।
मही + √भुज् + क्विप् ।

ईरयित्वा = √ईर् + णिच् + क्त्वा ।

प्रविश्य = प्र + √विश् + क्त्वा—ल्यप् ।

आचचक्षे = आङ् + √ख्या (चक्षिङ्) + लिट्लकार, प्रथमपुरुष ।

पत्यौ गते—'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी एकवचन ।
पतिः = √पा + डति

कृष्णासदनम् = कृष्णायाः सदनमिति । षष्ठी तत्पुरुष ।

अथवा कृष्णा + सदनम् । कृष्णा कर्मकारक, कर्मवाच्य में प्रथमा एक वचन । आचचक्षे द्विकर्मक क्रिया 'चक्षिङो दुहादेर्दिकर्मकत्वादप्रधाने कर्मणि लिट्' ।

सदनम् = √सद् + ल्युट् ।

कोष :

गीः = ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती—इत्यमरः

आत्तम् = आत्तं गृहीतं स्वाधीनीकृतमात्मवशीकृतम्—इति

पतिः = धवः पतिः प्रियो भर्ता—इत्यमरः

वनम् = अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्—इत्यमरः

सदनम् = निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्—इत्यमरः

सन्निधिः = सन्निधिःसन्निकर्षणम् – इत्यमरः

महीभुक् = पार्थिवो भूपतिर्भूपो महीभुक् क्ष्मापतिर्नृपः—इति ।

अथ = 'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ' इति ।

अलंकार—उत्तर वाक्य में पूर्ववाक्य का हेतु निर्देश होने से पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार ।

छन्द—वंशस्थ ।

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृतीस्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीरुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः ॥२७॥

घण्टापथ—निशम्येति । अथ द्रुपदात्मजा द्रौपदी द्विषतां सिद्धिं वृद्धिरूपां निशम्य ततस्तदन्तरम् । ततो द्विषद्भ्य आगतास्ततस्त्याः । अव्ययात्त्यप्' इति त्यप् । अपाकृतीः विकारान् विनियन्तुं निरोद्धुम् अक्षमा सती नृपस्य युधिष्ठिरस्य मन्युव्यवसाययोः क्रोधोद्योगयोर्दीपिनीः संवर्धिनीः गिरो वाक्यान्युदाजहार जगादेत्यर्थः ॥२७॥

अन्वयः—ततः द्रुपदात्मजा द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम् अक्षमा (सती) नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीः गिरः उदाजहार ॥२७॥

शब्दार्थः—ततः = तदनन्तरं युधिष्ठिरकथनानन्तरं; इसके अनन्तर; युधिष्ठिर

के कथन के पश्चात् । द्रुपदात्मजा = द्रुपदपुत्री द्रौपदी; राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी। द्विषतां = शत्रूणां कौरवाणां; शत्रुओं की, कौरवों की। सिद्धि = समृद्धिम् उत्कर्ष; समृद्धि, उत्कर्ष को। निशम्य = आकर्ण्य युधिष्ठिरमुखात् श्रुत्वा; युधिष्ठिर के मुख से सुनकर। ततस्त्याः = ततः आगताः द्विषद्भ्यः आयाताः शत्रुभ्यः प्राप्ताः, उससे आए हुए, शत्रु कौरवों के कारण प्राप्त हुए। अपाकृतीः = अपकारान् दुःख-जन्यमनोविकृतीः चित्तोद्गारान्; अपकारों को, दुःख से उत्पन्न हुए मानसिक विकारों, भावों को। विनियन्तुं = निरोद्धुम् अपनेतुं; नियन्त्रित करने में; दूर करने में। अक्षमा (सती) = असमर्था सती; असमर्थ होती हुई। नृपस्य = राज्ञः युधिष्ठिरस्य; राजा युधिष्ठिर के। मन्युव्यवसायदीपिनीः = क्रोधोद्योगसंवर्द्धिनीः; उत्तेजित करने वाली। गिरः = वाणीः वचनानि; वाणी, वचनों को। उदाजहार = उक्तवती जगाद; बोली कही ॥२७॥

संस्कृतव्याख्या — युधिष्ठिरमुखात्कौरवाणां प्रकर्षं निशम्य प्रतीकाराय कोपोत्साहवर्धकानि वचांसि द्रौपदी तं युधिष्ठिर कथयति।

तदनन्तरं युधिष्ठिरकथनानन्तरं द्रौपदी शत्रुकौरवाणां समृद्धि युधिष्ठिरस्यैव मुखाद् आकर्ण्य द्विषद्भ्यः कौरवेभ्यः आयाताः दुःखजन्यमनोविकृतीः निरोद्धुम-समर्था सती राज्ञो युधिष्ठिरस्य क्रोधोद्योगसंवर्द्धिनोर्वाणीः कथितवती ॥२७॥

हिन्दी व्याख्या—युधिष्ठिर के मुख से कौरवों की समृद्धि को सुनकर प्रतीकार के निमित्त क्रोध तथा उत्साह को बढ़ाने वाली उक्तियों को द्रौपदी ने कहा।

इसके अनन्तर राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी शत्रु कौरवों की समृद्धि को युधिष्ठिर के मुख से सुनकर, शत्रुओं के कारण प्राप्त दुःख से उत्पन्न मानसिक विकारों को रोकने में असमर्थ होती हुई राजा युधिष्ठिर के क्रोध तथा उत्साह को बढ़ाने वाली वाणी, बचनों को बोली ॥२७॥

टिप्पणी :

द्विषताम् = द्विषन्तीति द्विषन्तः, तेषाम्। √द्विष् + लट् शतृ।
अपाकृतीः = अपाकरणम् अपाकृतिः, ताः। अप् + आ + √कृ + क्तिन् भावे।
ततस्त्याः = ततः = तस्मादिति; तद् + ङसि—तसिल्।

ततः आगताः ततस्त्याः । ततस् + त्यप् टाप् ।

अक्षमा = क्षमते इति क्षमा । न क्षमा अक्षमा । नञ् तत्पुरुष ।

क्षमा = √क्षम् + अच् टाप् ।

मन्युव्यवसायदीपिनीः = मन्युश्च व्यवसायश्च मन्युव्यवसायौ । द्वन्द्व । दीपयन्तीति दीपिन्यः । मन्युव्यवसाययोः दीपिन्यः मन्युव्यवसायदीपिन्यः, ताः । षष्ठी तत्पुरुष । व्यवसायः = वि + अव + √सो + घञ् भावे ।

दीपिनी = √दीप् + णिनि कर्त्तरि + ङीप् । 'ऋन्नेभ्यो ङीप्'

द्रुपदात्मजा = आत्मनो जायते या सा आत्मजा । (उपपद,) द्रुपदस्य आत्मजा द्रुपदात्मजा । षष्ठी तत्पुरुष । आत्मजा = आत्मन् + √जन् + ड कर्त्तरि + टाप् ।

निशम्य = नि + √शम् + क्त्वा—ल्यप् ।

विनियन्तुम् = वि + नि + √यम् + तुमुन् ।

उदाजहार = उद् + आ + √हृ + लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन ।

कोषः

सिद्धिः = सिद्धिस्तु मोक्षे निष्पत्तियोगयोः—इति हैमः

द्विषत् = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः—इत्यमरः

मन्यु = मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि—इत्यमरः

गीः = ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती—इत्यमरः

अलंकार—तकार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास ।

पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार ।

छन्द—वंशस्थ ।

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः । २८ ।

घण्टापथ—भवादृशेष्विति । भवादृशा भवद्विधाः । पण्डिता इत्यर्थः । तेषु विषये । 'त्यदादिषु'—इत्यादिना वङ् 'आ सर्वनाम्नः' इत्याकारादेशः । प्रमदाजनोदितं स्त्रीजनोक्तम् । वदेः क्तः । 'वचिस्वपि०' इत्यादिना सम्प्रसारणम् । अनुशासनं नियोगवचनम् अधिक्षेपः तिरस्कार एव भवति । अतो न

युक्तं वक्तुमित्यर्थः। तथापि वक्तुमनुचितत्वेऽपि निरस्तनारीसमयाः त्याजित-शालीनतारूपस्त्रीसमाचाराः। 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। दुराधयः समयोल्लङ्घनहेतुत्वाद् दुष्टा मनोव्यथाः। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः। मां वक्तुं व्यवसाययन्ति प्रेरयन्ति। न किञ्चिदयुक्तं दुःखितानामिति भावः ॥२८॥

अन्वयः—भवादृशेषु प्रमदजनोदितन् अनुशासनम् अधिक्षेपः इव भवति तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः मां वक्तुं व्यवसाययन्ति ॥२८॥

भवादृशेषु = भवद्विधेषु श्रेष्ठजनेषु बुद्धिमत्सु सर्वज्ञेषु; आप युधिष्ठिर जैसे विद्वानों के प्रति। प्रमदाजनोदितं = स्त्रीजनोदीरितं कथितं; स्त्रियों के द्वारा कहा गया। अनुशासनं = उपदेशवचनं नियोगवचनम्; उपदेश वचन। अधिक्षेपः = आक्षेपः तिरस्कारः; अपमान, तिरस्कार। इव = जैसा सदृश। भवति = होता है। तथापि = विज्ञेष्वनुशासनस्य अधिक्षेपतुल्यत्वेऽपि, वक्तुमनुचितत्वेऽपि अयोग्य-त्वेऽपि; विद्वानों के प्रति अनुशासन का तिरस्कार जैसा होने पर भी। निरस्त-नारीसमयाः = त्याजितशालीनतारूपस्त्रीसमाचाराः त्यक्तयोषिदाचाराः; स्त्रियों के अनुरूप आचार, शालीनता को समाप्त कर देने वाली, मर्यादा को दूर कर देने वाली। दुराधयः = दुष्टा मनोव्यथाः; दुष्ट मन की व्यथाएँ, दुःख देने वाली मानसिक व्यथाएँ। मां = द्रौपदीं; मुझ द्रौपदी को। वक्तुं = अभिधातुं कथयितुं; कहने के लिए, आपके समक्ष बोलने के लिए। व्यवसाययन्ति = प्रेरयन्ति; प्रेरित करती है ॥२८॥

संस्कृतव्याख्या—पण्डितेष्वनुशासनं तदपि प्रमदाजनेनापमानं भवति। किंतु प्रतिपक्षनिमित्तजन्येन दुःखेनातिशयेनाभिभूता सती द्रौपदी शालीनता परित्यज्य युधिष्ठिरं वक्तुं प्रस्तुता भवति।

भवद्विधेषु विज्ञेषु स्त्रीजनैरुदीरितम् उपदेशवचनम् अपमानमिव भवति। एवं सत्यपि वक्तुमनुचितत्वेऽपि त्याजितशालीनतारूपस्त्रीसमाचारा दुष्टा मनोव्यथाः मां द्रौपदीं भवन्तमप्यभिधातुं प्रेरयन्ति। दुःखैः संतप्तानां किञ्चिदपि वक्तुं नायुक्तम् ॥२८॥

हिन्दी व्याख्या—पण्डितों के प्रति उपदेशवचन, वह भी स्त्रियों के द्वारा

कहा गया अपमान सदृश होता है। किंतु शत्रु कौरवों के कारण प्राप्त हुए दुःख से अतिशय अभिभूत हुई द्रौपदी अपनी शालीनता का परित्याग कर पूज्य युधिष्ठिर से प्रेरक वचन कहने के लिए बाध्य हो जाती है। आप युधिष्ठिर जैसे विद्वानों के प्रति स्त्रियों के द्वारा कहा गया उपदेशपूर्ण वचन अपमान के सदृश होता है। ऐसा होने पर भी अर्थात् स्त्रियों द्वारा पण्डितों को उपदेश देना अनुचित होने पर भी स्त्रियों के अनुरूप शालीनता को समाप्त कर देने वाली मानसिक मनोव्यथाएँ मुझ द्रौपदी को आप युधिष्ठिर के प्रति भी कहने के लिए प्रेरित कर रही हैं ॥२८॥

भावार्थ—द्रौपदी के हृदय में प्रज्ज्वलित हो रही भयंकर प्रतिशोध की भावना की प्रतिध्वनि प्रस्तुत श्लोक से प्राप्त हो रही है ॥

टिप्पणी :

भवादृशेषु = भवन्तमिव पश्यन्ति जनाः एतान्, ते भवादृशाः, तेषु। अथवा भवान् इव दृश्यन्ते ये ते भवादृशाः, तेषु। उपपद तत्पुरुष।

भवत् + √दृश् + कञ् कर्मकर्त्तरि।

प्रमदाजनोदितम् = प्रकृष्टो मदो यस्याः सा प्रमदा अथवा प्रमदः अस्ति अस्याः इति। प्रमदा चासौ जनश्च प्रमदाजनः। कर्मधारय।

प्रमदाजनेन उदितं प्रमदाजनोदितम्। तृतीया तत्पुरुष।

प्रमदः = प्र + √मद् + अप् भावे। प्रमदा = प्रमद + अच् + टाप्। अर्श आदित्वात्। उदितम् = √वद् + क्त कर्मणि।

निरस्तनारीसमयाः = नारीणां समयाः नारीसमयाः। षष्ठी तत्पुरुष।

निरस्ताः नारीसमयाः यैस्ते। बहुब्रीहि।

निरस्त निर् + √अस् + क्त कर्मणि। समयः = सम् √इ + अच्।

दुराधयः आधीयते दुःखमनेन अथवा प्रतीकाराय मनोऽनेनेति आधिः। दुष्टाः आधयः दुराधयः। प्रादि तत्पुरुष।

आधि प्रआ + √धा + कि भावे। 'उपसर्गे घोः किः'

अधिक्षेपः = अधि + √क्षिप् + घञ् भावे।

अनुशासनम् = अनु + √शास् + ल्युट् भावे।

वक्तुम् = √वच् + तुमुन् ।

व्यवसाययन्ति = वि + अव् + √सो + णिच् + लट्लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन ।

कोष :

प्रमदा = प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी—इत्यमरः

अधिक्षेपः = अधिक्षेपः समाक्षेपो व्यंग्ययुक्ते वचोऽपि वा—इति

समयः = समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः—इत्यमरः

आधिः = पुंस्याधिर्मानसी व्यथा—इत्यमरः

अलंकार—पूर्वार्द्ध में उपमा

हेतुनिर्देशपूर्वक समर्थन होने से काव्यलिंग ।

उभय अलंकारों की संसृष्टि ।

छन्द—वंशस्थ

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभिश्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः ।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता ॥२९॥

घण्टापथ—आखण्डमिति । आखण्डलतुल्यधामभिः इन्द्रतुल्यप्रभावैः स्ववंशजैः भूपतिभिः भरतादिभिः चिरम् अखण्डम् धृता मही त्वया मदच्युता मदं च्योततीति मदच्युत् क्विप् । तेन मदस्राविणा मतङ्गजेन स्रवगि आत्महस्तेन स्वकरेण, स्वचापलेनेत्यर्थः । अपवर्जिता परिहृता, त्यक्ता । स्वदोषादेवायमनर्थागम इत्यर्थः ॥२९॥

अन्वयः—अखण्डलतुल्यधामभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरन् अखण्डं धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्रक् इव आत्महस्तेन अपवर्जिता ॥२९॥

शब्दार्थः—आखण्डलतुल्यधामभिः = इन्द्रसमप्रभावैः इन्द्रतुल्यतेजोभिः; इन्द्र के सदृश तेज, पराक्रम वाले । स्ववंशजैः = निजकुलोत्पन्नैः स्वीयकुलजैः पूर्वजैः; अपने ही वंश, कुल में उत्पन्न हुए पूर्वजों के द्वारा । भूपतिभिः = भरतादिभिः महीपतिभिः महीपैः; भरत इत्यादि राजाओं के द्वारा । चिरं = चिरकालं चिराय दीर्घकालं बहुकालेन, चिरकाल से, बहुत दिनों तक । अखण्डं = अविच्छिन्नं सम्पूर्ण समग्रं यथा स्यात्तथा; सम्पूर्ण रूप से । धृता = धारिता पालिता स्वायत्तीकृता; धारण, पालन की गई, अपने अधिकार में की गई । मही = पृथिवी ।

त्वया = राज्ञा युधिष्ठिरेण; आप राजा युधिष्ठिर के द्वारा। मदच्युता = मदस्राविणा गण्डस्थलीयजलस्राविणा; मद जल बहाने वाले। मतङ्गजेन = मातङ्गेन हस्तिना; गज के द्वारा। स्रक् इव = माल्यमिव मालेव; पुष्प की माला की तरह। आत्म-हस्तेन = स्वकरेण स्वशुण्डेन; अपने हाथ से, सूंड से। अपवर्जिता = परिहृता विनाशिता; परित्याग कर दिया, फेंक दिया ॥२९॥

संस्कृतव्याख्या—पूर्वजैश्चिरकालं धृता धरा स्वाचापल्येनैव अस्माभि-र्विनाशिता। अतः स्वप्रमादजनितैव विपत्तिरेखा नहि दैवकृता—इति द्रुपदात्मजायाः कथनस्याभिप्रायः।

इन्द्रसमप्रभावैः स्वीयकुलजैः पूर्वजैः भरतादिभिर्महीपतिभिश्चिरकालं समग्र-रूपेण स्वायत्तीकृता पृथिवी भवता राज्ञा युधिष्ठिरेण मदजलस्राविणा प्रमत्तेन गजेन पुष्पमाल्यमिव स्वकीयकरेण चापल्येत परित्यक्ता। यथा मदमत्तः कश्चिन्मा-तङ्गः स्वशिरसि धृतां पुष्पमालां स्वयमेव स्वशुण्डेन क्षिपति, एवमेव भवता युधिष्ठिरेण पूर्वजैः प्राप्तै पृथिवी अनायासेनैव स्वप्रमादेन विनाशिता ॥२९॥

हिन्दी व्याख्या—पूर्वजों के द्वारा चिरकाल तक धारण की गई पृथिवी को अपनी चपलता के कारण हम लोगों ने शत्रु के हाथों में दे दी है। इस अनर्थ की प्राप्ति हम लोगों को अपने ही प्रमाद से हुई है, भाग्य से नहीं—द्रौपदी के कथन का यही अभिप्राय है।

इन्द्र के सदृश पराक्रम वाले अपने ही कुल में उत्पन्न हुए पूर्वज भरत इत्यादि राजाओं के द्वारा चिरकाल तक सम्पूर्णरूप से अपने अधिकार में की गई यह पृथिवी, अपने ही शुण्ड से मस्तक पर धारण की गई पुष्प की माला को फेंकने वाले मदजल बहाने वाले मत्तगज की तरह आप राजा युधिष्ठिर के द्वारा अपने ही हाथ से परित्यक्त कर दी गई ॥२९॥

भावार्थ—जिस प्रकार कोई प्रमत्त गजराज अपने ही शुण्ड से मस्तक पर रखी हुई पुष्पमाला को फेंक देता है, इसी प्रकार आप युधिष्ठिर द्वारा पूर्वजों से प्राप्त यह पृथिवी अनायास सहज में ही प्रमादवश त्याग दी गई।

टिप्पणी :

आखण्डलतुल्यधामभिः = आखण्डयति पर्वतान् इति आखण्डलः। आखण्डलेन तुल्यं धाम येषां ते आखण्डलतुल्यधामानः, तैः। बहुव्रीहि।

आखण्डलः = आ + √खण्ड् + डलच्। धामन् = √धा + मनिन्।

स्ववंशजैः = स्वस्य वंशः स्ववंशः। षष्ठी तत्पुरुष। स्ववंशात् जायन्ते ये ते स्ववंशजाः, तैः। उपपद तत्पुरुष। स्ववंश + √जन् + ड कर्मणि।

मदच्युता = मदं च्योततीति मदच्युत्, तेन। उपपद तत्पुरुष।
मद = √मद् + अप्। मद + √च्युत् + क्विप् कर्त्तरि।

मतङ्गजेन = मतङ्गात् जायते इति मतङ्गजः, तेन। उपपद तत्पुरुष;
मतङ्ग + √जन् + ड कर्त्तरि।

अपवर्जिता = अप + वृज् + ड कर्त्तरि।

अखण्डम् = न खण्डम् अखण्डम्, तद् यथा स्यात्तथा।
नास्ति खण्डं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा।

आत्महस्तेन = आत्मनः हस्तः आत्महस्तः, तेन। षष्ठी तत्पुरुष।

भूपतिभिः = पाति इति पतिः। भुवः पतयः भूपतयः, तैः। षष्ठी तत्पुरुष।
भू + √पा + डति।

धृता = √धृ + क्त कर्मणि + टाप्।

स्रक् = सृज्यते इति। √स्रज् + क्विप्।

कोष :

आखण्डलः = आखण्डलः सहस्राक्षः—इत्यमरः।

तुल्यः = वाच्यलिङ्गाः समस्तुल्यः सदृक्षः सदृशः सदृक्—इत्यमरः।

चिरम् = चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः—इत्यमरः।

वंशः = वंशोऽन्ववायः सन्तानः—इत्यमरः।

स्रक् = माल्यं मालास्रजौ—इत्यमरः।

मतङ्गजः = मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी—इत्यमरः।

अखण्डम् = समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके—इत्यमरः।

धाम = धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः—इति मेदिनी।

हस्तः = हस्तः करे करिकरे सप्रकोष्ठकरेऽपि च—इति मेदिनी।

अलङ्कार—उपमा अलंकार ।

छन्द—वंशस्थ ।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान् असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥३०॥

घण्टापथ—व्रजन्तीति । मूढधियः निर्विवेकबुद्धयः । ते पराभवम् व्रजन्ति ये मायाविषु मायावत्सु विषयेषु 'अस्मायामेधा०' इत्यादिना विनिप्रत्ययः । मायिनः मायावन्तः व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः । न भवन्ति । अत्रैव अर्थान्तरं न्यस्यति—प्रविश्येति । शठाः अपकारिणो धूर्ताः तथाविधान् अकुटिलान् असंवृताङ्गान् अवर्मितशरीरान् निशिताः इषवः इव प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा आत्मीया भूत्वा घ्नन्ति हि । 'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः' इति भावः ॥३०॥

अन्वयः—ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति ते मूढधियः पराभवं व्रजन्ति । हि शठाः तथाविधान् असंवृताङ्गान् निशिताः इषवः इव प्रविश्य घ्नन्ति ॥३०॥

शब्दार्थः—ये = ये पुरुषाः, जो मनुष्य । मायाविषु = मायावत्सु कपटपूर्णेषु जनेषु; मायावियों के प्रति, छल-कपट करने वाले मनुष्यों के प्रति । मायिनः = मायावन्तः कपटपूर्णाः; मायावी, माया से युक्त, कपट से पूर्ण । न = नहीं । भवन्ति = होते हैं । ते = वे । मूढधियः = विवेकशून्यबुद्धयः मन्दबुद्धयः पुरुषाः; विवेकशून्य मन्दबुद्धि वाले पुरुष । पराभवं = पराजयम् अपमानं पराजय, अपमान को । व्रजन्ति = प्राप्नुवन्ति गच्छन्ति; प्राप्त होते हैं, जाते हैं । हि = यतः; क्योंकि । शठाः = अपकारिणः धूर्ताः कुटिलपुरुषाः; दुष्ट, अपकार करने वाले कुटिल व्यक्ति । तथाविधान् = तादृशान् सरलान् अकुटिलान्; उस प्रकार के सरल, कुटिलतारहित सज्जनों को । असंवृताङ्गान् = कवचादिभिः अरक्षितदेहान् कवचरहितशरीरान्; कवच इत्यादि से अरक्षित देह वाले लोगों को । निशिताः = तीक्ष्णाः तीक्ष्णीकृताः; अतिशय तीक्ष्ण । इषवः = शराः वाणाः; बाणों की । इव = तरह । प्रविश्य = अन्तःप्रवेशं कृत्वा आत्मीयाः भूत्वा रहस्यं ज्ञात्वा; भीतर प्रवेश करके, आत्मीय बनकर, रहस्य को जानकर । घ्नन्ति = नाशयन्ति; मार डालते हैं, नष्ट कर देते हैं ॥१०॥

संस्कृतव्याख्या—आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। शठे शाठ्यमेवाचरेद् इति प्रतिपादितमत्र।

ये पुरुषा मायावत्सु मायावन्तः कपटपूर्णा न भवन्ति ते विवेकशून्याः पुरुषाः सर्वत्र पराजयं प्राप्नुवन्ति। यतः कुटिलपुरुषाः तादृशान् अकुटिलान् सरलान् कवचादिभिररक्षितदेहान् तीक्ष्णाः शरा इव प्रविश्य आत्मीया भूत्वा विनाशयन्ति। यथा तीक्ष्णाः शराः कवचादिभिरनाच्छादिताङ्गान् प्रविश्य घ्नन्ति एवमेव कपटयुक्ता जना आत्मीया भूत्वा सज्जनान् विनाशयन्ति। अतः मायिषु सरलता न समुचिता ॥३०॥

हिन्दी व्याख्या—कुटिल व्यक्तियों के प्रति ऋजुता की नीति उत्तम नहीं है। शठों के साथ शठता का ही व्यवहार करना चाहिए—यही द्रौपदी के कथन का अभिप्राय है।

जो मनुष्य मायावियों के प्रति स्वयं मायावी नहीं बनते, विवेकरहित वे मनुष्य सर्वत्र पराजय, को प्राप्त करते हैं। क्योंकि कुटिल व्यक्ति उस प्रकार के कुटिलता से रहित सज्जनों को, प्रवेश करके कवच इत्यादि से अरक्षित देह वाले पुरुषों को मारने वाले अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की तरह, आत्मीय बनकर रहस्य को जानकर मार डालते हैं ॥३०॥

भावार्थ—जिस प्रकार कवच इत्यादि से अनाच्छादित अङ्गों वाले मनुष्य को उनके शरीर के भीतर प्रवेश करके तीक्ष्ण बाण मार डालते हैं उसी प्रकार मायवी व्यक्ति सज्जनों के आत्मीय बनकर उनके रहस्यों को जानकर उनका विनाश कर देते हैं। अतः मायावियों के प्रति सरलता की नीति उत्तम नहीं है ॥३०॥

टिप्पणी :

मूढधियः = ध्यायति अनाय इति धीः। मूढा धीः येषां, ते। बहुव्रीहि।

मूढा = √मुह् + क्त कर्त्तरि टाप्। धीः = √ध्यै + क्विप् कर्त्तरि।

मायाविषु = माया = विश्वं मात्यस्यां, मिमीते इति, मां याति इति।

√मा + य + टाप् । माया अस्ति एषामिति मायाविनः, तेषु ।

माया + विनि मत्वर्थे । 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' से विनि ।

मायिनः = माया अस्ति एषामिति, ते । माया + इनि मत्वर्थे । 'व्रीह्यादिभ्यः' से इनि ।

तथाविधान् = तथा विधा येषां, ते तथाविधाः, तान् । बहुव्रीहि ।

तथा = तद् + थाल् । 'प्रकारवचने थाल्' से थाल् ।

असंवृताङ्गान् = न संवृतम् असंवृतम् । नञ् तत्पुरुष ।

असंवृतानि अङ्गानि येषां, ते असंवृताङ्गाः, तान् । बहुव्रीहि ।

नञ् + सम् + √वृ + क्त कर्मणि ।

निशिताः = नि + √शो + क्त कर्मणि ।

पराभवम् = परिभवनं पराभवः, तम् ।

परिभवः = परि + √भू + अप् भावे । परा + √भू + अप्

प्रविश्य = प्र + √विश् + क्त्वा—ल्यप् ।

घ्नन्ति = √हन् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन ।

कोष :

पराभवः = पराभवः परिभवः पराजयः—इति

शठः = निकृतस्त्वनृजुः शठः—इत्यमरः

इषुः = पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाऽऽशुगाः । कलम्बमार्गणशराः पत्री रोप इषुर्द्वयोः—इत्यमरः

निशितः = अथनिशितक्ष्णुतशातानि तेजिते—इत्यमरः

अलंकारः—हेतुनिर्देशपूर्वक समर्थन होने से काव्यलिंग अलंकार तथा उपमा । दोनों की संसृष्टि ।

छन्द—वंशस्थ ।

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥३१॥

घण्टापथ—गुणेति । अनुरक्तसाधनोऽनुकूलसहायवान् । उक्तं च कामन्दकीये 'उद्योगादनिवृत्तस्य सुसहायस्य धीमतः । छायेवानुगता तस्य नित्यं श्रीः

सहचारिणी' इति। कुलाभिमानी क्षत्रियत्वाभिमानी कुलीनत्वाभिमानी च। त्वदन्यस्त्वत्तोऽन्यः। 'अन्यारात्०' इत्यादिना पञ्चमी। क इव नराधिपो गुणैः सन्ध्यादिभिः सौन्दर्यादिभिश्च अनुरक्तामनुरागिणीं कुलजां कुलक्रमादागतां कुलीनां च मनोरमां श्रियम् आत्मवधूमिव स्वभार्यामिव 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः। परैः शत्रुभिरन्यैश्च अपहारयेत् स्वयमेवापहारं कारयेदित्यर्थः। कलत्रापहारवल्लक्ष्म्यपहारोऽपि राज्ञां मानहानिकरत्वादनुपेक्षणीय इति भावः ॥३१॥

अन्वय—अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वत् अन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमाम् आत्मवधूम् इव गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमां श्रियं परैः अपहारयेत् ॥३१॥

शब्दार्थः—अनुरक्तसाधनः = अनुकूलसहायकः अनुकूलसहायवान् स्निग्धानुचरः = अनुराग युक्त साधनों वाला, सदैव अनुकूल रहने वाले सेवकों, अनुचरों से युक्त। कुलाभिमानी = कुलीनत्वाभिमानी स्ववंशाभिमानी क्षत्रियत्वाभिमानी निजवंशमर्यादारक्षणशीलः; अपने वंश की परम्परा पर अभिमान करने वाला। त्वत् अन्यः = त्वत्तः युधिष्ठिरात् अन्यः अपरः व्यतिरिक्तः तुमसे अन्य, आप युधिष्ठिर से अतिरिक्त। कः इव नराधिपः = को नृपपितः नृपः; कौन राजा। गुणानुरक्तां = शौर्यशीलसौन्दर्यादिभिः शोभनैः गुणैः अनुरागिणीम् अनुरागवतीं; वीरता-शील-सौन्दर्य इत्यादि सुन्दर गुणों के कारण अनुराग रखने वाली। कुलजां = सत्कुलोद्भवां श्रेष्ठकुलोत्पन्नां कुलीनां; उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाली, कुलीना। मनोरमां = मनोज्ञां मनोहारिणीं मनोऽनुकूलां हृदयाह्लादिनीं; मन को अपनी ओर आकर्षित करने वाली, हृदय को आनन्दित करने वाली। आत्मवधूम् इव = स्वभार्यामिव निजपत्नीमिव गृहलक्ष्मीमिव; अपनी पत्नी गृहलक्ष्मी की तरह। गुणानुरक्तां = संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयरूपैः षड्गुणैः अनुरक्तां; संधिविग्रह-यान-आसन-द्वैधोभाव-संश्रय नामक षड्विध गुणों के कारण अनुराग रखने वाली, स्थायीरूप से रहने वाली। कुलजां = कुलक्रमाद् आगतां वंशपरम्परया प्राप्तां; वंश परम्परा से प्राप्त हुई। मनोरमां = मनस्तोषकारिणीं; मन को सन्तुष्ट, प्रसन्न करने वाली। श्रियं = राजलक्ष्मीं; राजलक्ष्मी का। परैः—

अन्यैः अपरैः शत्रुभिः = दूसरों के द्वारा, शत्रुओं के द्वारा । अपहारयेत् = स्वयमेव अपहारम् अपहरणं कारयेत् विनाशयेत्; स्वयं ही अपहरण, विनाश करायेगा ॥ ३१॥

संस्कृतव्याख्या—लोके यथा भार्यापहरणं गर्हितं प्रतिष्ठाविनाशकं तथैव राजलक्ष्म्या अपीति युधिष्ठिरम् आक्षिपन्ती द्रौपदी कथयति ।

स्निग्धानुचरः स्ववंशाभिमानी भवतो युधिष्ठिराद् व्यतिरिक्तः कोऽपरो नृपतिः स्याद् यः शौर्यशीलसौन्दर्यादिभिः शोभनैर्गुणैरनुरागवतीं सत्कुलोद्भवां मनोज्ञां निजपत्नीमिव संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयरूपैः षड्गुणैरनुरक्तां स्थायिनीं वंशपरम्परया प्राप्तां मनस्तोषकारिणीं राजलक्ष्मीम् अपरैः शत्रुभिरपहरणं कारयेत् । भवता युधिष्ठिरेण तु युगपदेव सर्वगुणसम्पन्ना प्रिया स्वपत्नी तथा च राजलक्ष्मीः उभे अपहारिते ॥३१॥

हिन्दीव्याख्या—संसार में जिस प्रकार अपनी पत्नी का अपहरण प्रतिष्ठा का विनाशक होता है, उसी प्रकार राजलक्ष्मी का अपहरण भी, युधिष्ठिर पर यही आक्षेप करती हुई द्रौपदी कहती है ।

अनुरागी अनुचरों वाला, अपने वंश की परम्परा पर अभिमान करने वाला आप युधिष्ठिर से अतिरिक्त कौन ऐसा राजा होगा जो वीरता-शील-सौन्दर्य इत्यादि सुन्दर गुणों के कारण अनुराग रखने वाली उत्तम कुल में उत्पन्न होनेवाली, मनोज्ञ अपनी पत्नी की तरह संधि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधीभाव संश्रय नामक षड्विध गुणों के कारण स्थायी बनी हुई, वंशपरम्परा से प्राप्त हुई, मन को प्रसन्न करने वाली राजलक्ष्मी का शत्रुओं के द्वारा स्वयं ही अपहरण करायेगा अर्थात् कोई भी नहीं ॥३१॥

भावार्थ—द्रौपदी के कहने का अभिप्राय है कि आपने अनुराग रखने वाली अपनी पत्नी तथा राजलक्ष्मी दोनों का शत्रुओं के द्वारा अपहरण कराया है, जो कि एक स्वाभिमानी राजा के लिए सर्वथा अशोभनीय तथा अत्यन्त निन्दनीय है ।

टिप्पणी—

गुणानुरक्ताम् = गुणैः अनुरक्ता गुणानुरक्ता, ताम् । तृतीया तत्पुरुष ।
अनुरक्ता = अनु + √रञ्ज् + क्त कर्त्तरि—टाप् ।

अनुरक्तसाधनः = साधयत्यनेनेति साधनम् । अनुरक्तं साधनं यस्य, सः ।
बहुव्रीहि ।
अनुरक्तम् = अनु + √रञ्ज् + क्त कर्मणि ।
साधनम् = √साध् + णिच् + ल्युट् करणे ।

कुलाभिमानी = कुलस्य अभिमानः कुलाभिमानः । षष्ठी तत्पुरुष ।
कुलाभिमानः अस्ति अस्येति कुलाभिमानी ।
अभिमानः = अभि + √मन् + घञ् भावे ।
कुलाभिमानी = कुलाभिमानः + इनि मत्वर्थे ।

कुलजाम् = कुलात् कुले वा जायते कुलजा, ताम् । उपपद तत्पुरुष ।
कुल + √जन् + ड कर्त्तरि—टाप् । 'सप्तम्यां जनेर्डः' ।

नराधिपः = अधिपातीति अधिपः । नराणाम् अधिपः नराधिपः । नर + अधि + √पा + क कर्त्तरि । 'आतश्चोपसर्गे'

मनोरमाम् = रमयतीति रमा । मनसो रमा मनोरमा, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष ।
रमा = √रम् + णिच् + अच्—टाप् । 'पचाद्यच्'

आत्मवधूम् = आत्मनः वधूः आत्मवधूः, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष ।

अपहारयेत् = अप + √हृ + णिच् + विधिलिङ्, प्रथम पुरुष, एक वचन ।

कोष :

साधनम् = निवर्त्तनोपकरणानुव्रज्यासु च साधनम्—इत्यमरः ।

वधूः = योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूर्जाया स्नुषा स्त्री चेत्यमरः ।

श्रीः = लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया—इत्यमरः ।

कुलम् = सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजननाऽन्वयौ—इत्यमरः ।

अलंकारः—श्लेषानुप्राणित मालोपमालंकार ।

छन्दः—वंशस्थ।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥३२॥

घण्टापथ—भवन्तमिति। हे नरदेव! नरेन्द्र, एतर्हि इदानीम् अस्मिन्नापत्कालेऽपीत्यर्थः। 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः। 'इदमोर्हिल्' इति हिल् प्रत्ययः। 'एतेतौ रथोः' इत्येतादेशः। आपदमेवाह—मनस्विगर्हिते शूरजनजुगुप्सिते वर्त्मनि मार्गे विवर्तमानं शत्रुकृतां दुर्दशामनुभवन्तमित्यर्थः। भवन्तं त्वाम् उदीरित उद्दीपितो मन्युः क्रोधः। शुष्कं नीरसम् 'शुषः कः' इति निष्ठातकारस्य ककारः। शमी चासौ तरुश्चेति विशेषणसमासः। तम् शमीतरुम् शमीवृक्षम्। शमीग्रहणं शीघ्रज्वलनस्वभावात् कृतम्। उच्छिखः उद्गतज्वालः। 'घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः। अग्निरिव वह्निरिव। कथं न ज्वलयति। ज्वलयितुमुचितमित्यर्थः। 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वः ॥३२॥

अन्वय—नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव कथं न ज्वलयति ॥३२॥

शब्दार्थः—नरदेव = भो नरेन्द्र! मानवेन्द्र नराधिप!; हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, राजन्। एतर्हि = इदानीम् अधुना अस्मिन् विपत्तिकाले; इस समय, इस विपत्ति की दशा में। मनस्विगर्हिते = मानिजननिन्दिते वीरजननिन्दिते शूरजनजगुप्सिते; स्वाभिमानी मनुष्यों के द्वारा गर्हित, निन्दित। वर्त्मनि = मार्गे; मार्ग पर। विवर्तमानं = विद्यमानं संस्थितं शत्रुजन्याम् अपमानरूपां दुर्दशामनुभवन्तं; विद्यमान, बार बार चलते हुए, शत्रु द्वारा प्रदान की गई दयनीय दशा का अनुभव करते हुए। भवन्तं = त्वां युधिष्ठिरं; आप युधिष्ठिर को। उदीरितः = उद्दीपितः उद्गतः परिवर्धितः; उद्दीप्त, बढ़ा हुआ। मन्युः = क्रोधः कोपः; क्रोध। शुष्कं = नीरसं; नीरस सूखे हुए। शमीतरुं = शमीवृक्षं; शमीनामक प्रज्वलनशील वृक्ष को। उच्छिखः = उद्गतज्वालः उज्ज्वालः प्रज्वलितः; ऊँची उठी हुई शिखाओं, लपटों वाला, प्रज्वलित हुआ। अग्निः इव = वह्निः इव; अग्नि की तरह। कथं = कस्मात्कारणात् कुतः; किस कारण से, क्यों। न = नहि; नहीं। ज्वलयति = दहति दीपयति; जला देता ॥३२॥

संस्कृतव्याख्या—विद्वेषभावनया व्यथिता द्रौपदी प्रतीकाराय युधिष्ठिरं कोपयति ।

भो नरेन्द्र ! अधुना अस्मिन् विपत्तिकाले वीरजनविनिन्दिते वर्त्मनि विद्यमानम् अर्थात् शत्रुजन्यां दुर्दशामनुभवन्तं भवन्तं युधिष्ठिरं नीरसं शमीनामकं वृक्षं प्रज्वलितोऽग्निरिव परिवर्धितः कोपः कस्मात्कारणान्न दहति ॥३२॥

हिन्दीव्याख्या—विद्वेष की भावना से व्यथित द्रौपदी प्रतीकार के लिए युधिष्ठिर को क्रोधयुक्त बनाती है ।

हे नरेन्द्र ! इस विपत्ति की अवस्था में स्वाभिमानी मनुष्यों के द्वारा निन्दित मार्ग पर विद्यमान रहते हुए अर्थात् शत्रु कौरवों के कारण प्राप्त हुई दयनीय दशा का अनुभव करते हुए आप युधिष्ठिर को शुष्क शमीवृक्ष को जलाने वाले प्रज्वलित अनल की तरह बढ़ा हुआ क्रोध क्यों नहीं जला देता अर्थात् जैसे शमी को अग्नि शीघ्र ही जला देती है उसी प्रकार दुर्दशा से उत्पन्न क्रोध भी आपको जला देना चाहिए, प्रतीकार के लिए सक्रिय कर देना चाहिए ॥३२॥

टिप्पणी —

मनस्विगर्हिते = प्रशस्तं मनः अस्ति एषामिति मनस्विनः । मनस्विभिः गर्हितं मनस्विगर्हितं, तस्मिन् । तृतीया तत्पुरुष ।

मनस्विन् = मनस् + विनि मत्वर्थे । 'अस्मायामेधास्रजो विनिः'

गर्हितम् = √गर्ह् + क्त कर्मणि ।

नरदेव = नराणां देवः नरदेवः । षष्ठीतत्पुरुष । अथवा नरेषु देवः नरदेवः । सप्तमी तत्पुरुष । अथवा नरः देवः इव नरदेवः । उपमित कर्मधारय । तत्सम्बुद्धौ ।

शमीतरुम् = शमी चासौ तरुश्चेति तम् । कर्मधारय । अथवा शमीनामा तरुः इति । शाकपार्थिव की तरह कर्मधारय । तरु = √तॄ + उ करणे । तरत्यनेनेति ।

उच्छिखः = उद्गता शिखा यस्य स उच्छिखः । बहुव्रीहि ।

शुष्कम् = √शुष् + क्त कर्त्तरि ।

वर्त्मन् = √वृत् + मनिन् ।

उदीरित = उद् + √ईर् + णिच् + क्त ।

ज्वलयति = √ज्वल् + णिच्-लट् लकार, प्रथमपुरुष। एकवचन। 'मितां ह्रस्वः' से ज्वालयति के आ को अ।

विवर्तमानम् = वि√वृत् + लट् शानच्।

एतर्हि = इदम् + र्हिल् स्वार्थे। 'इदमोर्हिल्' से 'र्हिल्' प्रत्यय तथा 'एतेतौ रथोः' से इदम् को 'एत' आदेश।

कोष :

वर्त्मन् = अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः—इत्यमरः

मन्युः = मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि—इत्यमरः

अग्निः = अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः—इत्यमरः

एतर्हि = एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा—इत्यमरः

शिखा = घृणिज्वाले अपि शिखे—इत्यमरः

शमी = शमी सक्तुफला शिवा—इत्यमरः

अलङ्कारः—तकार तथा नकार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास तथा उपमा।

छन्दः—वंशस्थ।

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥३३॥

घण्टापथ—अवन्ध्येति। अवन्ध्यः कोपो यस्य तस्य अवन्ध्यकोपस्य। अत एव आपदां विहन्तुः निग्रहानुग्रहसमर्थस्येत्यर्थः। पुंस इति शेषः। देहिनो जन्तवः स्वयमेव वश्याः, वशङ्गता भवन्ति। 'वशं गतः' इति यत्प्रत्ययः। अतस्त्वया कोपिना भवितव्यमित्यर्थः। व्यतिरेके त्वनिष्टमाचष्टे—अमर्षशून्येन निष्कोपेन जन्तुना। कन्यया शोक इतिवत् 'हेतौ' इति तृतीया। हृदयस्य कर्म हार्दं स्नेहः। 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः' इत्यमरः। युवादित्वादण्। 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदादेशः। जातहार्देन जातस्नेहेन सता जनस्य आदरो न। विद्विषा द्विषता च सता दरो न। अमर्षहीनस्य रागद्वेषावकिञ्चित्करत्वादगण्यावित्यर्थः। अथवा विद्विषा सता दरो भयं न। 'दरोऽस्त्रियां भये

श्वभ्रे' इत्यमरः। एतस्मिन्नेव प्रयोगे सन्धिवशाद् द्विधा पदच्छेदः। पुंवाक्येषु न दोषः। अतः स्थाने कोपः कार्यः। त्याज्यस्त्वस्थाने कोप इति भावः ॥३३॥

अन्वयः—अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः पुरुषस्य) देहिनः स्वयमेव वश्याः भवन्ति। अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदरः न (भवति), विद्विषा (सता) दरः न (भवति) ॥३३॥

शब्दार्थः—अवन्ध्यकोपस्य = अमोघक्रोधस्य अनिष्फलामर्षस्य सफलक्रोधस्य; जिसका क्रोध निष्फल; व्यर्थ नहीं होता, सफल क्रोध वाले। आपदां = विपत्तीनां क्लेशानां; विपत्तियों, आपदाओं का। विहन्तुः = विनाशकस्य संहारकस्य निवारकस्य पुरुषस्य; विनाश करने वाले, दूर करने वाले पुरुष के। देहिनः = सर्वे प्राणिनः; सभी प्राणी। स्वयमेव = स्वतः एव आत्मनैव; स्वयं ही। वश्याः = वशंगताः वशीभूताः अनुगताः; वशीभूत, वश में, अधिकार में। भवन्ति = जायन्ते; हो जाते हैं। (किन्तु) अमर्षशून्येन = क्रोधशून्येन कोपहीनेन; क्रोध-रहित। जन्तुना = जनेन पुरुषेण; पुरुष के। जातहार्देन = सञ्जातस्नेहेन जातानुरागेण प्राप्तप्रेम्णा; स्नेह होने पर, अनुराग से युक्त होने के कारण। जनस्य = लोकस्य पुरुषस्य; मनुष्य का। आदरः = सम्मानः सत्कारः बहुमानः; सम्मान। न = नहीं। (भवति = होता है)। (एवमेव)। विद्विषा सता = द्विषता शत्रुणा विरोधिना सता; शत्रुता, विरोध होने पर। दरः = भयं; भय। न = नहीं। (भवति = होता है) विद्विषादरः = १. विद्विषा = आदर; २. विद्विषा = दरः ॥३३॥

संस्कृत व्याख्या—लोकेऽस्मिन् क्रोधरहितः पुरुषो न सम्मानं लभते न तु तस्माद् बिभेति कश्चित्।

सफलक्रोधस्य विपदां विनाशकस्य पुरुषस्य सर्वे प्राणिनः स्वयमेव वशीभूता भवन्ति। किन्तु कोपहीनेन जनेन जातानुरागेण लोकस्य सम्मानो न भवति। क्रोधशून्येन विरोधिना सता भयं न भवति ॥३३॥

भावार्थः—यो हि राजाऽमोघक्रोधो भवति तस्य वशे सर्वे प्राणिनः स्वयमेव जायन्ते तथा स्नेहप्रकाशनेऽपि स समादरं लभते। अतः राज्ञा काले क्रोधसम्पन्नेन भवितव्यम् ॥३३॥

हिन्दी व्याख्या—क्रोधरहित व्यक्ति इस लोक में न तो सम्मान को प्राप्त करता है और न तो उससे कोई भयभीत ही होता है। सफलक्रोध वाले तथा विपत्तियों का विनाश करने वाले पुरुष के वशीभूत सभी प्राणी हो जाते हैं। किंतु क्रोधरहित पुरुष के अनुराग से युक्त होने पर उसके प्रति किसी मनुष्य का सत्कार नहीं होता और कोपरहित व्यक्ति के शत्रुता से युक्त होने पर उससे किसी को भय भी नहीं होता ॥३३॥

भावार्थ—जो राजा अमोघक्रोधवाला होता है, उसके वश में सभी प्राणी स्वयं ही हो जाते हैं और स्नेह करने पर भी वह सम्मान को प्राप्त करता है। अतः समयानुसार राजा को क्रोध करना ही चाहिए।

टिप्पणी :

अबन्ध्यकोपस्य = बन्धुं योग्यः बन्ध्यः। अथवा बन्धनं बन्धुः, बन्धे साधुः बन्ध्य।

न बन्ध्यः अबन्ध्यः। नञ् तत्पुरुष।

अबन्ध्यः कोपो यस्य स अबन्ध्यकोपः, तस्य। बहुव्रीहि।

बन्ध्यः = (१) √बन्ध् + ण्यत् कर्मणि।

(२) √बन्ध् + घञ् = बन्धः + यत्।

कोपः = √कुप् + घञ्।

अमर्षशून्येन = न मर्षः अमर्षः। नञ् तत्पुरुष।

अमर्षेण शून्यः अमर्षशून्यः, तेन। तृतीया तत्पुरुष।

मर्षः = √मृष् + घञ् भावे।

जातहार्देन = हृदयस्य कर्म हार्दम्।

जातं हार्दम् अस्यासौ जातहार्दः, तेन। बहुव्रीहि। जातम् = √जन् + क्त।

'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' से हृदय का हृद् आदेश।

विद्विट् = वि + √द्विष् + क्विप्।

आदरः = आ + √दृ + अप्।

आपदाम् = आ + √पद् + क्विप् भावे, षष्ठी बहुवचन।

वश्याः = वशं गताः वश्याः। √वश् + यत्। प्रथमा बहुवचन।

देहिनः = देहः अस्ति एषामिति देहिनः दिह् + घञ् = देह + इनि मत्वर्थे।
प्रथमा बहुवचन।

विहन्तुः = वि + √हन् + तृच् कर्तरि। षष्ठी एक वचन।

कोष :

कोपः = कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिघारुट्क्रुधौ स्त्रियौ—इत्यमरः।

जन्तुः = जन्तुजन्युशरीरिणः—इत्यमरः।

हार्दम् = प्रेमा नाप्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः—इत्यमरः।

दरः = दरोऽस्त्रियाँ भये श्वभ्रे—इत्यमरः।

अलंकारः—नकार तथा ज कार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास।

छन्दः—वंशस्थ।

परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः ॥३४॥

घण्टापथ—परिभ्रमन्निति। लोहितचन्दनोचितः उचितलोहितचन्दनः। वाहिताग्न्यादिषु' इति साधुः। अभ्यस्तरक्तचन्दन इत्यर्थः। 'अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम्' इति यादवः। महारथो रथचारी। उभयत्रापि प्रागिति शेषः। अद्य तु रेणुरूषितो धूलिच्छुरितः। पादाभ्यामतति गच्छतीति पदातिः पादचारी। 'अज्यतिभ्यां च' इत्यनुवृत्तो 'पादे च' इत्यौणादिक इन्प्रत्ययः। 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पदादेशः। अन्तर्गिरि गिरिष्वन्तः। विभक्तयोऽव्ययीभावः। 'गिरेश्च सेनकस्य' इति विकल्पात् समासान्ताभावः। परिभ्रमन् अयम् वृकोदरो भीमः। सत्यधनस्य इति सोल्लुण्ठवचनम्। अद्यापि सत्यमेव रक्ष्यते न तु भ्रातर इति भावः। तवेति शेषः। मानसं नो दुनोति कच्चित् न परितापयति। 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः। स्वाभिप्रायाविष्करणं कामप्रवेदनम् ॥३४॥

अन्वयः—(प्राक्) लोहितचन्दनोचितः महारथः (सम्प्रति) रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् अयं वृकोदरः सत्यधनस्य (ते) मानसं नो दुनोति कच्चित् ॥३४॥

शब्दार्थः—(प्राक् = पूर्वं त्वयि युधिष्ठिरे सिंहासनारूढे सति; पूर्वकाल में, आप युधिष्ठिर के सिंहासनारूढ रहने पर)। लोहितचन्दनोचितः = रक्तचन्दनचर्चितः अभ्यस्तरक्तचन्दनः केशरयुक्तं यच्चन्दनं तेनोचितः भूषितः; रक्त चन्दन के योग्य, केशर मिश्रित चन्दन के योग्य, लाल चन्दन के लेप का अभ्यासी। महारथः = अतिरथः रथविहरणशीलः मृगयाद्यर्थं पर्यटन् रथगामी; विशाल रथ पर संचरण करने वाला। (सम्प्रति = अधुना राज्यभ्रष्टे त्वयि; इस समय, आपके राज्य से च्युत हो जाने पर)। रेणुरूषितः = रेणुव्याप्तः धूलिधूसरितः; धूलि से भरा हुआ, धूसरित। पदातिः = पादचारी पादगामी चरणचारी; पैदल घूमते हुआ। अन्तर्गिरि = पर्वतेषु पर्वतमध्ये; दुर्गमपर्वतेषु गिरिगुहान्तरेषु; पर्वतों में। परिभ्रमन् = पर्यटन्; इधर-उधर भटकता हुआ। अयं = एषः पुरःस्थः प्रसिद्धः; यह सामने स्थित। वृकोदरः = कोकजठरः भीमसेनः; भीमसेन। सत्यधनस्य (ते) = सत्यवित्तस्य सत्यमेव सर्वस्वं मन्यमानस्य सत्यवादिनः तव युधिष्ठिरस्य; सत्य रूप धनवाले सत्यव्रती आप युधिष्ठिर के। मानसं = मनः चित्तं हृदयं; मन को। नो = न; नहीं। दुनोति = परितापयति सन्तापयति; दुःखी बनाता, सन्तप्त करता। कच्चित् = किं; क्या ॥३४॥

संस्कृतव्याख्या—अत्रास्मिन् श्लोके भीमसेनस्य दयनीयाऽवस्था निरूपिता। प्राक् त्वयि युधिष्ठरे सिंहासनारूढे सति रक्तचन्दनचर्चितो मृगयाद्यर्थं रथविहरणशीलः किंतु सम्प्रति राज्यभ्रष्टे त्वयि धूलिधूसरितश्चरणचारी पादाभ्यामेव गिरिगुहान्तरेषु पर्यटन् अटनशीलः एष पुरःस्थो भीमसेनः सत्यवित्तस्य सत्यवादिनो भवतो युधिष्ठिरस्य हृदयं न सन्तापयति किम्। अर्थाद् रक्तचन्दनचर्चितशरीरो यो भीमसेनः पुरा रथमारुह्य मृगयादिव्याजेन परिभ्रमति स्म स एवेदानीं रेणुव्याप्तशरीरः पादाभ्यामेव पर्वतेष्वितस्ततः परिभ्रमन् भवन्तं न पीडयति किम्? सत्यस्यैव रक्षणं परिपालनं भवता क्रियते न तु स्वभ्रातॄणाम् ॥३४॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में भीमसेन की दीन-हीन दशा का चित्रण किया गया है। पूर्वकाल में आप युधिष्ठिर के सिंहासनारूढ रहने पर केशरमिश्रित चन्दन के लेप के योग्य अर्थात् लाल चन्दन का लेप लगाने वाला, मृगया इत्यादि के लिए विशाल रथ पर संचरण करने वाला और अब आपके राज्य से च्युत

हो जाने पर धूलि से धूसरित, पैदल ही चलने वाला, पर्वतों में इधर-उधर भटकता हुआ सामने स्थित यह भीमसेन सत्यरूप धन वाले आप युधिष्ठिर के मन को परितप्त नहीं करता क्या ? अर्थात् जो भीमसेन पहले रक्तचन्दन का लेप लगाकर विशाल रथ पर बैठकर विहार किया करता था, धूलि से भरे हुएँ शरीर वाला वही आज पैदल ही गिरि कन्दराओं में इधर-उधर भटक रहा है ॥३४॥

भावार्थ—एकमात्र आप सत्य की रक्षा कर रहे हैं, अपने अनुशासन में रहने वाले अनुजों की नहीं; यही द्रौपदी के कथन का अभिप्राय है ।

टिप्पणी :

लोहितचन्दनोचितः = लोहितं चन्दनं लोहितचन्दनम् । कर्मधारय । उचितं लोहितचन्दनम् अस्येति लोहितचन्दनोचितः । बहुव्रीहि ।

'वाहिताग्न्यादिषु' से उचित पद का अन्त में प्रयोग ।

उचितम् = √उच् + क्त कर्मणि । चन्दनम् = चदि + ल्युट् ।

पदातिः = पादाभ्याम् अतति इति पदातिः । उपपद । पाद + √अत् + इञ् ।

अन्तर्गिरि = गिरिषु अन्तः इति अन्तर्गिरि । अव्ययीभाव ।

रेणुरूषितः = रेणुभिः रूषितः रेणुरूषितः । तृतीया तत्पुरुष ।

रूषितः = √रूष् + क्त कर्त्तरि ।

महारथः = महान् रथः अस्येति महारथः । बहुव्रीहि ।

सत्यधनस्य = सत्यं धनम् अस्येति सत्यधनः, तस्य । बहुव्रीहि ।

मानसम् = √मन् + असुन् = मनस् + अण् ।

वृकोदरः = वृकस्य उदरमिव उदरं यस्य सः । बहुव्रीहि ।

परिभ्रमन् = परि + √भ्रम् + लट् शतृ । प्रथमा एकवचन ।

दुनोति = √दु + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

कोष :

लोहितः = लोहितो रोहितो रक्तः—इत्यमरः

चन्दनः = पाटीरश्चन्दनोऽस्त्री च गन्धसारः—इति

रेणुः = रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्ना न द्वयो रजः—इत्यमरः

रूषित: गुण्ठितरूषिते—इत्यमर:
मानसम् = चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मन:—इत्यमर:
वृक: = वातप्रमीर्वातमृग: कोकस्त्वीहामृगो वृक:—इत्यमर:
उचितम् = अभ्यस्तेऽभ्युचितं न्याय्यम्—इति यादव:
उदरम् = पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्—इत्यमर:
अलंकार—परिकर

छन्द—वंशस्थ

विजित्य य: प्राज्यमयच्छदुत्तरान् कुरूनकुप्यं वसु वासवोपम: ।
स वल्कवासांसि तवाधुनाऽऽहरन् करोति मन्युं न कथं धनञ्जय: ।।३५।।

घण्टापथ—विजित्येति । वासव: इन्द्र: उपमा उपमानं यस्य स: वासवोपम इन्द्रतुल्य: । यो धनञ्जय: । उत्तरान् कुरून् मेरोरुत्तरान् मानुषान् देशविशेषान् । विजित्य प्राज्यं प्रभूतम् । 'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्' इत्यमर: । कुप्यादन्यदकुप्यम् हेमरूप्यात्मकम् । 'स्यात् कोशश्च हिरण्यञ्च हेमरूप्ये कृताकृते । ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यम्' इत्यमर: । वसु धनम् । अयच्छद् दत्तवान् । 'पाघ्रा'—इत्यादिना दाणो यच्छादेश: । स धनञ्जयतीति धनञ्जयो अर्जुन: । 'संज्ञायां भृतॄवृजि०'—इत्यादिना खच् प्रत्यय: । 'अरुर्द्विषद्०'—इत्यादिना मुमागम: । अधुना अस्मिन् काले । 'अधुना' इति निपातनात् साधु: तव वल्कवासांसि आहरन् कथं तव मन्युं क्रोधं दु:खं वा न करोति न उत्पादयति ।।३५।।

अन्वय:—वासवोपम: य: उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्यं वसु अयच्छत्, स: धनञ्जय: अधुना तव वल्कवासांसि आहरन् (तव) मन्युं कथं न करोति ।।३५।।

शब्दार्थ:—वासवोपम: = इन्द्रोपम: महेन्द्रकल्प: शक्रसम:; इन्द्र के सदृश । य: = अर्जुन:; जो अर्जुन । उत्तरान् कुरून् = मेरुपर्वतादुत्तरान् कुरुनामदेशविशेषान्, मेरुसन्निहितान् 'उत्तरकुरु' नामकान् धनधान्यसमृद्धान् मानवजनपदविशेषान्; उत्तर कुरुदेश को, मेरुपर्वत के उत्तर में स्थित धनधान्य से समृद्ध कुरु नामक विशेष जनपद को । विजित्य = विजयं कृत्वा, स्वायत्तीकृत्य स्वाधीनीकृत्य; विजय

करके, अपने अधिकार में करके। प्राज्यं = प्रचुरं प्रभूतं बहुलं विपुलं; प्रभूतमात्रा में। अकुप्यं = कुप्यभिन्नं हेमरूप्यात्मकं सुवर्णरजतरत्नादिकं; सुवर्ण-रजत रूप। वसु = धनं; धन को। अयच्छत् = अददात् प्रददौ दत्तवान्; दिया, प्रदान करता था। सः = सः प्रसिद्धः, तादृशः उत्तरकुरुविजयी दिग्विजयी; वही प्रसिद्ध उत्तरकुरुदेश को जीतने वाला अथवा दिग्विजयी। धनञ्जयः = अर्जुनः कुबेर को भी जीतने वाला अर्जुन। अधुना = इदानीं साम्प्रतम् अस्मिन् काले; अब इस समय। तव = भवतो युधिष्ठिरस्य सर्वभ्रातृसुखदुःखानुभवशीलस्य; सभी भाइयों के सुख-दुःख का अनुभव करने वाले आप युधिष्ठिर के। वल्कवासांसि = वल्कलवस्त्राणि; तरुत्वङ्मयानि वस्त्राणि वल्कलवस्त्रों को। आहरन् = वनेभ्यः वृक्षेभ्यः आनयन् गृह्णन्; वन से, वृक्षों से ले आता हुआ। (तव = भवतः युधिष्टिरस्य आप युधिष्ठिर के) मन्युं = क्रोधं कोपं दुःखं; क्रोध, दुःख को। कथं = कस्मात्कारणात्; क्यों, किस कारण से। न = नहि; नहीं। करोति = उत्पादयति; उत्पन्न करता है ॥३५॥

संस्कृतव्याख्या—अत्र श्लोकेऽस्मिन् अर्जुनस्य दीनदशा चित्रिता।

महेन्द्रकल्पो योऽर्जुनः मेरुसन्निहितान् 'उत्तरकुरु' नामकान् धनधान्यसमृद्धान् मानवजनपदविशेषान् स्वायत्तीकृत्य प्रभूतं हेमरूप्यात्मकं धनम् अददात्, स प्रसिद्धः उत्तरकुरुविजयी धनञ्जयः साम्प्रतं सर्वभ्रातृसुखदुःखानुभवशीलस्य तव युधिष्ठिरस्य वल्कलवस्त्राणि वृक्षेभ्यः आनयन् क्रोधं कस्मात्कारणान्नोत्पादयति अर्थात् महेन्द्रविक्रमो योऽर्जुनः पूर्वं देशान् विजित्य बहुलं धनमानयत् तस्यैव शक्तिरधुना केवलं वल्कलवस्त्रादाने विनियोजिता दुष्प्रयोजिता। तस्य क्लेशमवलोक्य भवान् अखिन्नः स्वस्थः ॥३५॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में अर्जुन की दीनदशा का चित्रण किया गया है।

इन्द्र के सदृश (पराक्रमी) जो अर्जुन मेरु पर्वत के उत्तर में स्थित धनधान्य से समृद्ध उत्तरकुरु नामक देश को अपने अधिकार में करके प्रचुर मात्रा में सुवर्ण-रजत रूप धन को प्रदान करता था, उत्तरकुरु को जीतने वाला वही धनञ्जय इस समय सभी भाइयों के सुखदुःख का अनुभव करने वाले आप

युधिष्ठिर के वल्कलवस्त्रों को वृक्षों से ले आता हुआ क्रोध को क्यों उत्पन्न नहीं करता अर्थात् आपको शत्रु के प्रति क्रोधयुक्त क्यों नहीं बनाता ? ॥३५॥

भावार्थ—इन्द्र के समान पराक्रमी जो अर्जुन पहले देशों को जीत कर बहुल रूप से धन को लाया करता था, उसकी शक्ति का दुरुपयोग अब केवल वल्कलवस्त्र लाने में हो रहा है। उसके क्लेश को भी देखकर आप स्वस्थ हैं, इस प्रकार युधिष्ठिर को द्रौपदी प्रेरित करती है ॥३५॥

टिप्पणी :

प्राज्यम् = (१) प्राजीयते इति प्राज्यम्। प्र + √अज् + ण्यत् कर्मणि।
(२) प्रकर्षेण अज्यते काम्यते इति प्राज्यम्। प्र + √अञ्ज् + क्यप् कर्मणि।

अकुप्यम् = गुप्यते इति कुप्यम्।
न कुप्यम् अकुप्यम्, तत्। नञ् तत्पुरुष।
कुप्यम् = √गुप् + क्यप् कर्मणि। 'गुपेरादेः कत्वं च संज्ञायाम्, से गकार को ककार।

वासवोपमः = उपमीयते इति उपमा। वासवः उपमा यस्य, सः वासवोपमः। ब्रहुव्रीहि।
वासवः = वसु + अण्। उपमा = उप + √मा + अङ् भावे—टाप्।

धनञ्जयः = धनं जयतीति धनञ्जयः। उपपद तत्पुरुष। धन + √जि + खच्। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' से मुम्।

वल्कवासांसि + वल्कानि एव वासांसि इति कर्मधारय।
वासः = वस्यते आच्छाद्यतेऽनेनेति। √वस् + असुन्।
वल्कम् = वल् + कन्।
मन्युः = √मन् + युच्। 'यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्'

विजित्य = वि + √जि + क्त्वा—ल्यप्।

आहरन् = आ + हृ + लट् शतृ। प्रथमा एकवचन।

अयच्छत् = √दा + लङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। यच्छादेश।

कोश :

प्राज्यम् = प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्—इत्यमरः

वासवः = सुत्रामा गोत्रभिद् वज्री वासवो वृत्रहा वृषा = इत्यमरः

अकुप्यम् = स्यात्कोशश्च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते ।

ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यम् ॥ इत्यमरः ।

वल्कम् = त्वक् स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्—इत्यमरः ।

वसु = वसु तोये धने मणौ—इति ।

अलंकारः—छेकानुप्रास ।

छन्दः—वंशस्थ ।

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥३६॥

घण्टापथ—वनान्तेति । वनान्तो वनभूमिरेव शय्या तथा कठिनीकृताकृती कठिनीकृतदेहौ । 'आकारो देह आकृतिः' इति वैजयन्ती । विष्वक् समन्तात् । 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः कचाचितौ कचव्याप्तौ । विकीर्णकेशावित्यर्थः । अत एव अगजौ गिरिसम्भवौ गजाविव । स्थितौ एतौ युग्मजातौ माद्रीपुत्रावित्यर्थः । 'यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमे यमजेऽपि च' इति विश्वः । विलोकयन् त्वं कथं धृतिसंयमौ सन्तोषनियमौ । धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्वः बाधितुं नोत्सहसे न प्रवर्तसे । 'शकधृष०' इत्यादिना तुमुन् । अहो ते महद्धैर्यमिति भावः ॥३६॥

अन्वयः—वनन्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सहसे ॥३६॥

शब्दार्थः—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती = वनभूमिपर्यङ्ककठोरीकृतदेहौ वनभूम्यास्तरणरूक्षीकृताकारौ गहनविपिनभूमिशयनकठोरीभूतशरीरौ; वन की भूमि रूपी शय्या (पर शयन करने) के रूक्ष; कठोर हुई आकृति, देह वाले । विष्वक् = समन्ततः सर्वतः परितः; सभी ओर से, चारों तरफ से । कचाचितौ = केशव्याप्तौ विशीर्णकेशौ केशव्याप्तदेहौ; केशों से व्याप्त, बालों से ढके हुए शरीर वाले ।

अगजौ = अद्रिसम्भूतौ गिरिसम्भवौ पर्वतोत्पन्नौ; पर्वत में उत्पन्न हुए, पर्वतीय। गजौ इव = कुञ्जरौ हस्तिनौ इव; दो हाथियों की तरह। एतौ = पुरःस्थौ इमौ; सामने स्थित इन दोनों। यमौ = यमलौ युग्मजातौ सहजौ माद्रीसुतौ नकुलसहदेवौ; यमल, साथ उत्पन्न हुए माद्री के पुत्र नकुल तथा सहदेव को। विलोकयन् = संपश्यन्; देखते हुए। त्वं = भवान् युधिष्ठिर; आप युधिष्ठिर। धृतिसंयमौ = धैर्यनियमौ; धैर्य और संयम को। बाधितुं = निरोद्धुम् अपसारयितुं परित्यक्तुं; छोड़ने, परित्याग करने के लिए। कथ = कुतः कस्मात्कारणात्; क्यों, किस कारण से। न = नहि, नहीं। उत्सहसे = प्रवर्तसे प्रवृत्तो भवसि प्रवृत्त होते हो, प्रस्तुत होते हो।

संस्कृतव्याख्या—श्लोकेऽस्मिन् नकुलसहदेवयोर्दीनदशा निरूपिता।

विपिनभूमिशयनकठोरीभूतशरीरौ समन्ततः केशव्याप्तौ गिरिसम्भूतौ कुञ्जराविव पुरःस्थाविमौ यमलौ माद्रीसुतौ नकुलसहदेवौ संपश्यन् त्वं धैर्यनियमौ परित्यक्तुं कस्मात्कारणान्न प्रवर्तसे प्रवृत्तो भवसि। स्वपालनीयानुजानां दयनीयां दशां संपश्यन्नपि भवान् स्वस्थचित्तः स्वस्थचित्तः प्रतीकाररहितः। विचित्रं ते धैर्यम् ॥३६॥

हिन्दीव्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में नकुल तथा सहदेव की दीनदशा का वर्णन युधिष्ठिर से द्रौपदी करती है।

वन की भूमिरूपी शय्या (पर शयन करने) से कठोर हुए देह वाले, चारों तरफ से केशों से भरे हुए अर्थात् बढ़े हुए बालों वाले दो पर्वतीय हाथियों की तरह सामने स्थित इन दानों यमलों का अर्थात् माद्री के यमल पुत्र नकुल तथा सहदेव को देखते हुए आप युधिष्ठिर अपने धैर्य और संयम को छोड़ने के लिए प्रस्तुत क्यों नहीं होते? ॥३६॥

भावार्थ—विशाल पर्वतीय गजराज के सदृश पराक्रमी नकुल तथा सहदेव की दुर्दशा को देखते हुए भी आप प्रतीकार के लिए प्रस्तुत नहीं हो रहे हैं, यही द्रौपदी के कहने का अभिप्राय है।

टिप्पणी :

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती = वनस्य अन्तः वनान्तः। षष्ठी तत्पुरुष।

वनान्तः एव शय्या वनान्तशय्या । कर्मधारय ।

अथवा वनान्ते शय्या वनान्तशय्या । सुप्सुपा ।

अकठिना कठिना कृता इति कठिनीकृता । गति समास ।

वनान्तशय्यया कठिनीकृता वनान्तशय्याकठिनीकृता । तृतीया तत्पुरुष ।

वनान्तशय्याकठिनीकृता आकृतिर्ययोः, तौ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती । बहुव्रीहि ।

कठिनीकृता = कठिन + च्वि + √कृ + क्त कर्मणि—टाप् ।

शय्या = शेते अत्र इति शय्या √शी + क्यप् अधिकरणे ।

आकृति = आ + √कृ + क्तिन् ।

कचाचितौ = कचैः आचितौ इति कचाचितौ । तृतीया तत्पुरुष ।

आचितः = आ + √चि + क्त कर्मणि ।

अगजौ = न गच्छतीति अगः । अगे जातौ अगजौ । उपपद तत्पुरुष ।

अगः = नञ् + √गम् + ड कर्त्तरि ।

अगजः = अग + √जन् + ड कर्त्तरि ।

धृतसंयमौ = धृतिश्च संयमश्च धृतिसंयमौ, तौ । द्वन्द्व । द्वितीया द्विवचन ।

धृतिः = √धृ + क्तिन् भावे । संयमः = सम् + √यम् + अप् भावे ।

यमः = √यम् + घञ् ।

विष्वक् = विषु + √अञ्च् √क्तिन् ।

विलोकयन् = वि + √लोक + लट् शतृ । प्रथमा एकवचन ।

बाधितुम् = √बाध् + तुमुन् ।

उत्सहसे = उत् + √सह् + लट् मध्यम पुरुष, एकवचन ।

कोषः

वनम् = अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्—इत्यमरः ।

शय्या = शय्यायां शयनीयवत् । शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः खट्वया समाः—इत्यमरः

कचः = चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः—इत्यमरः ।

गजः = मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी—इत्यमरः ।

धृतिः = धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु—इति विश्वः ।

यमः = यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमे यमजेऽपि च—इत्यमरः ।
विष्वक् = समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि—इत्यमरः ।
आकृतिः = आकारो देह आकृतिः—इति वैजयन्ती ।
अलंकारः—अनुप्रास-यमक उपमा की संसृष्टि ।

छन्द—वंशस्थ ।

इमामहं वेद न तावकीं धियं विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाजयः ॥३७॥

घण्टापथः—इमामिति । इमां वर्तमानाम् । तव इमां तावकीं त्वदीयाम् । 'तस्येदम्' इत्यण्प्रत्ययः । 'तवकममकावेकवचने' इति तवकादेशः । धियं त्वदापद्विषयां चित्तवृत्तिमहं न वेद कीदृशी वा न वेद्मि । परबुद्धेरप्रत्यक्षत्वादिति भावः । 'विदो लटो वा' इति लटो णलादेशः । न चात्मदृष्टान्तेन आपन्नत्वाद् दुःखित्वमनुमातुं शक्यते । धीरादिष्वनैकान्तिकत्वादित्याशयेनाह चित्तवृत्तयो विचित्ररूपा धीराधीराद्यनेकप्रकाराः खलु । किन्तु परामुत्कृष्टां भवदापदं विचिन्तयन्त्या भावयन्त्या मम चेतश्चित्तम् । आधयो मनोव्यथाः । 'उपसर्गे घोः किः' इति किप्रत्ययः । प्रसभं प्रसह्य रुजन्ति भञ्जन्ति । 'रुजो भङ्गे' इति धातोर्लट् । पश्यतामपि दुःसहा दुःखजननी त्वद्विपत्तिरनुभवितारं त्वां न विकरोतीति महच्चित्रमित्यर्थः । चेत इति । 'रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः' इति षष्ठी न भवति । तत्र शेषाधिकारात् शेषत्वस्य विवक्षित्वादिति ॥३७॥

अन्वयः—इमां तावकीं धियम् अहं न वेद । चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः (भवन्ति) खलु । (किन्तु) परां भवदापदं विचिन्तयन्त्याः मम चेतः आधयः प्रसभं रुजन्ति ॥३७॥

शब्दार्थः—इमां = एताम् ईदृशीं; इस प्रकार की । तावकीं = त्वदीयां तुम्हारी आप युधिष्ठिर की । धिय = बुद्धि मति चित्तवृत्ति; बुद्धि, चित्तवृत्ति को । अहं = द्रौपदी; मैं द्रौपदी । न वेद = न वेद्मि जानामि परबुद्धेः अप्रत्यक्षत्वात् ज्ञातुं न शक्नोमि; नहीं जानती; दूसरे व्यक्ति की बुद्धि के प्रत्यक्ष न होने के कारण जानने में समर्थ नहीं हूँ । चित्तवृत्तयः = मनोवृत्तयः संकल्पविकल्पादयो मनोव्यापाराः;

मन की वृत्तियाँ, संकल्प-विकल्प रूप मन के व्यापार। विचित्ररूपाः = विविध-प्रकाराः अनेकरूपाः; विविध प्रकार की, भिन्न-भिन्न प्रकार की। (भवन्ति = होती हैं)। खलु = हि किल निश्चयेन; क्योंकि, निश्चित रूप से। (किन्तु) परां = प्रबलां विवृद्धां महतीं साम्राज्यविनाशपराभवादिरूपां; प्रबल, महती, साम्राज्य के विनाश पराभव आदि रूपी, बढ़ी हुई। भवदापद = भवतः विपत्ति व्यसनं शोचनीयां दशां; आपकी विपत्ति, दुर्दशा का। विचिन्तयन्त्याः = विचार-यन्त्याः भावयन्त्याः; विचार करती हुई, सोचती हुई। मम = द्रौपद्याः; मुझ द्रौपदी के। चेतः = चित्त मानसं; मन को। आधयः = मानसव्यथाः मनोव्यथाः; मन की व्यथाएँ। प्रसभं = प्रसह्य बलपूर्वकं; बलपूर्वक, अत्यधिक रूप से। रुजन्ति = विदारयन्ति पीडयन्ति व्याकुलीकुर्वन्ति; विदीर्ण, व्यथित, पीडित, व्याकुल कर रही है ॥३७॥

संस्कृतव्याख्या—युधिष्ठिरस्य दुर्दशामनुभवन्ती दुःखेन अभिभूता द्रौपदी स्वस्थं निर्विकारं युधिष्ठिरं कथयति।

ईदृशीं त्वदीयां युधिष्ठिरस्य बुद्धिमहं द्रौपदी न जानामि। हि संकल्प-विकल्पादयो मनोवृत्तयो विविधप्रकारा भवन्ति। किंतु महतीं भवतो विपत्ति दुर्दशां विचारयन्त्या मम द्रौपद्या मानसं मनोव्यथा बलपूर्वकं विदारयन्ति अर्थात् दुःखयुक्तं भवन्तं पश्यन्ती भवद्दुःखैरभिभूता संजाताऽहं किंतु भवांस्तु सन्तुष्टः। एतादृशपरिभवानुभवेऽपि स्वजनक्लेशदर्शनेऽपि भवान् प्रतीकाररहितः स्वस्थः ॥३७॥

हिन्दी व्याख्या—युधिष्ठिर की दयनीय दशा का अनुभव करती हुई दुःख से अभिभूत हुई द्रौपदी स्वस्थ विकाररहित युधिष्ठिर से कहती है।

आपकी इस बुद्धि को मैं नहीं जानती। क्योंकि मन की वृत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। किंतु आपकी महती विपत्ति पर विचार करती हुई मेरे मन को मानसिक व्यथा बलपूर्वक विदीर्ण कर रही है।

भावार्थ—आप युधिष्ठिर की दुर्दशा देखकर मैं द्रौपदी अत्यधिक व्यथित हूँ। किंतु इस प्रकार का परिभव होने पर तथा स्वजनों के दुःख को देखकर भी आप प्रतीकाररहित हैं—यही द्रौपदी के कथन का अभिप्राय है ॥३७॥

टिप्पणी :

तावकीम् = तव इयं तावकी, ताम् । युष्मद् + अण्—ङीप् ।

'तस्येदम्' से अण् तथा 'तवकममकावेकवचने' से युष्मद् को तवक आदेश ।

विचित्ररूपाः = विशेषेण चित्राः विचित्राः । प्रादितत्पुरुष ।

अतिशयेन विचित्राः इति विचित्ररूपाः ।

अथवा विचित्रं रूपं यासां, ताः विचित्ररूपाः । बहुव्रीहि ।

चित्तवृत्तयः = चित्तानां वृत्तयः चित्तवृत्तयः । षष्ठी तत्पुरुष ।

चित्तम् = √चित् + क्त । वृत्तिः = √वृत् + क्तिन् ।

आधयः = आधीयते दुःखमनेन अथवा आधीयते प्रतीकाराय मनोऽनेन इति आधिः । आ + √धा + कि । 'उपसर्गे धोः किः' ।

धियम् – ध्यायत्यनया इति धीः, ताम् । √ध्यै + क्विप् ।

चेतः = चेतति अनेन इति । √चित् + असुन् ।

भवदापदम = भवतः आपद् इति भवदापद्, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष ।

आपद् = आ + √पद + क्विप् ।

विचिन्तयन्त्याः = वि + √चिन्त् + णिच् + लट् शतृ—ङीप् । षष्ठी एकवचन ।

वेद = √विद् + लट्, उत्तम पुरुष, एकवचन । 'विदो लटो वा' से 'मि' के स्थान पर 'णल्' आदेश ।

रुजन्ति = √रुज् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन ।

कोषः

धीः = बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः—इत्यमरः

चेतः = चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः—इत्यमरः

आधिः = पुंस्याधिर्मानसी व्यथा—इत्यमरः

आपद् = विपत्त्यां विपदापदौ—इत्यमरः

प्रसभम् = प्रसभन्तु बलात्कारो हठः—इत्यमरः

अलङ्कारः—दृष्टान्त ।

छन्दः—वंशस्थ ।

पुराधिरूढः शयनं महाधनं विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः ।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जहासि निन्द्रामशिवैः शिवारुतैः ॥३८॥

घण्टापथ—पुरेति । यस्त्वं महाधनं बहुमूल्यं श्रेष्ठम् । 'महाधनं महामूल्ये' इति विश्वः । शयनं शय्याम् अधिरूढः सन् । स्तुतयो गीतयश्च ता एव मङ्गलानि तैः स्तुतिगीतमंगलैः करणभूतैः पुरा विबोध्यसे । वैतालिकैरिति शेषः । पूर्वं बोधित इत्यर्थः । 'पुरि लुङ् चास्मे' इति भूतार्थे लट् । स त्वम् अदभ्रदर्भाम् बहुकुशाम् । 'अस्त्री कुशं कुशो दर्भः' इति । 'अदभ्रं बहुलं बहु' इति चामरः । स्थलीम् अकृत्रिमभूमिम् । 'जानपद०'—इत्यादिना कृत्रिमार्थे ङीप् । एतेन दुःसहस्पर्शत्वमुक्तम् । 'अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म' इति कर्मत्वम् । अधिशय्य शयित्वा । 'अयङ् यि क्ङिति' इत्ययङादेशः । अशिवैरमङ्गलैः शिवारुतैः क्रोष्टुवाशितैः । 'शिवा हरीतकी कोष्ट्री शमी नद्यामलक्युभे' इति वैजयन्ती । निद्रां जहासि । अद्येति शेषः ॥३८॥

अन्वयः—यः (त्वं) महाधनं शयनम् अधिरूढः (सद्) स्तुतिगीतिमंगलैः पुरा (वैतालिकैः) विबोध्यसे सः (त्वम्) अदभ्रदर्भाम् स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः (अधुना) निद्रां जहासि ॥३८॥

शब्दार्थः—यः (त्वं) = यः त्वं महाराजः युधिष्ठिरः; जो आप महाराज युधिष्ठिर । महाधनं = बहुमूल्यं स्वर्णरत्नादिखचितं; बहुमूल्य, अत्यधिक मूल्य वाले, स्वर्णरत्न इत्यादि जड़े हुए । शयनं = शय्यां पर्यङ्कं; शय्या पर्यङ्क पर । अधिरूढः (सन्) = आरूढः सन् अधिसुप्तः आरुह्य सुखेन सुप्तः सन्; आरूढ हुए, शयन करते हुए । स्तुतिगीतिमंगलैः = स्तवनगानरूपैः मंगलपाठैः; सद्‌गुणों के वर्णन तथा गीति रूप मांगलिक शब्दों के द्वारा, प्रशंसा तथा गायन रूप शुभ शब्दों के द्वारा । पुरा = पूर्वस्मिन् समये राजसिंहासनासीनकाले; पूर्वकाल में, आपके राजसिंहासन के समय । विबोध्यसे (वैतालिकैः) = वैतालिकवन्दिमागधादिभिः बोधितः विनिद्रः जायसे; जगाये जाते थे । सः (त्वं) = स त्वं युधिष्ठिरः; वही आप युधिष्ठिर । अदभ्रदर्भाम् = बहुकुशां प्रचुरकुशां कुशकण्टकव्यापृतां; कुशों से भरी हुई, प्रचुर कुशों वाली । स्थलीं = वनस्थलीं प्रकृतिभूमिम् अपरिष्कृतां

भूमि; वनस्थली, अपरिष्कृत भूमि पर। अधिशय्य = शयित्वा; शयन करके, सो करके। अशिवैः = अमंगलैः अभद्रैः कर्णकठोरैः; अमंगल, कर्णकटु। शिवारुतैः = शृगालीशब्दैः शिवानाम् आर्त्तनादैः जम्बुकीरवैः; शृगालियों के शब्दों द्वारा। (अधुना वनवासकाले; इस समय वनवास काल में)। निद्रां जहासि = निद्रां परित्यजसि विनिद्रो भवसि; निद्रा त्यागते हो, जागते हो ॥३८॥

संस्कृतव्याख्या—श्लोकेऽस्मिन् युधिष्ठिरस्य सिंहासनारूढसमयस्य वनवास-कालस्य चोभे दशे निरूपिते।

यस्त्वं महाराजो युधिष्ठिरः स्वर्णरत्नादिखचितं बहुमूल्यं शयनम् अधिसुप्तः सन् स्तवनगायनरूपैर्माङ्गलिकैः शब्दैः पूर्वस्मिन् कालेऽर्थाद् राजसिंहासनासीन समये वैतालिकवन्दिमागधप्रभृतिभिर्विनिद्रो भवसि स्म त्वमधुना वनवासकाले तीक्ष्णमुखाग्रैः कुशकण्टकैर्व्याप्ताम् अपरिष्कृतां भूमिम् अधिशय्य अमङ्गलैः शृगालीशब्दैर्विनिद्रो भवसि। एतादृशायां विपत्तौ प्राप्तायामपि भवान् प्रतीकार-रहित इत्यभिप्रायः ॥३८॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में युधिष्ठिर की सिंहासनारूढ समय की तथा वनवास काल की दोनों दशाओं का चित्रण किया गया है।

जो आप महाराज युधिष्ठिर सुवर्णरत्नों से जड़े हुए बहुमूल्य शय्या पर सुखपूर्वक शयन करते हुए पूर्वकाल में अर्थात् अपने राजसिंहासनासीन काल में वैतालिक-वन्दि-मागध इत्यादि के द्वारा उच्चारण किए गए प्रशंसा तथा गायन रूप मांगलिक शब्दों के द्वारा जगाए जाते थे, वही आप अब इस वनवास काल में तीक्ष्णमुखवाले प्रचुर कुशों से भरी हुई अपरिष्कृत (विषम) भूमि पर शयन करके अमांगलिक शृगालियों के शब्दों के द्वारा निद्रा त्यागते हैं।

भावार्थ—इस प्रकार की विपत्ति को प्राप्त करके भी आप प्रतीकार शून्य हैं—यही द्रौपदी के कथन का अभिप्राय है ॥३८॥

टिप्पणी :

महाधनम् = महत् धनं यस्य तद् महाधनम्। बहुव्रीहि।

शयनम् = शय्यतेऽस्मिन्निति। √शी + ल्युट् अधिकरणे।

स्तुतिगीतिमङ्गलैः = स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः। द्वन्द्व।

अथवा स्तुतीनां गीतयः स्तुतिगीतयः षष्ठी तत्पुरुष ।

स्तुतिगीतयः एव मङ्गलानि स्तुतिगीतिमङ्गलानि:, तैः । कर्मधारय ।

स्तुतिः = √स्तु + क्तिन् भावे । गीतिः = √गै + क्तिन् भावे ।

शिवारुतैः = शिवानां रुतानि शिवारुतानि, तैः । षष्ठी तत्पुरुष ।

रुतम् = √रु + क्त भावे ।

अदभ्रदर्भाम् = अदभ्राः दर्भाः यस्यां सा अदभ्रदर्भा, ताम् । बहुव्रीहि ।

अशिवैः = न शिवानि अशिवानि, तैः । नञ् तत्पुरुष ।

अधिरूढः = अधि + √रुह् + क्त कर्तरि ।

अधिशय्य = अधि + √शी + क्त्वा—ल्यप् । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से अधि उपसर्ग के योग में 'शीङ्' धातु के अधिकरण स्थलों' को कर्मसंज्ञा और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति ।

विबोध्यसे = वि + √बुध् + णिच् + लट्, मध्यम पुरुष, एकवचन ।

'पुरि लुङ् चास्मे' सूत्र से भूत अर्थ में लट् लकार ।

जहासि = √हा + लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

कोष :

शयनम् = शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः खट्वया समाः—इत्यमरः ।

अदभ्रम् = अदभ्रं बहुलं बहु—इत्यमरः ।

शिवा = शिवा हरीतकी क्रोष्टी शमी नद्यामलक्युभे – इति वैजयन्ती ।

स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः—इत्यमरः ।

निद्रा = स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि—इत्यमरः ।

महाधनम् = महाधनं महामूल्ये—इति विश्वः ।

दर्भः = अस्त्री कुशं कुशो दर्भः—इत्यमरः ।

अलंकारः—विषम अलंकार, छेकानुप्रास ।

छन्दः – वंशस्थ ।

पुरोपनीतं नृप रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा ।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः ॥३९॥

द्विजभुक्तावशिष्टेनान्धसाऽन्नेन। 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नम्' इत्यमरः। रमणीयस्य भावो रामणीयकं मनोहरत्वमुपनीतं प्रापितम्। नयतेर्द्विकर्मकत्वात्। प्रधाने कर्मणि क्तः। प्रधानकर्मण्याख्येये लादोनाहुर्द्विकर्मणाम्' इति वचनात्। अद्य वन्यफलाशिनः ते तव वपुर्यशसा समं परभतिमात्रं कार्श्यं परैति प्राप्नोति। उभयमपि क्षीयत इत्यर्थः। अत्र सहोक्तिरलंकारः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—"सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्" इति ॥३९॥

अन्वयः—नृप ! यत् एतत् (वपुः) पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीत अन्यफलाशनः ते तद् वपुः अद्य यशसा समं परं कार्श्यं परैति ॥३९॥

शब्दार्थः— नृप = भो राजन् युधिष्ठिर !; हे राजन् युधिष्ठिर ! यत् = जो। एतत् (वपुः) = इद पुरो वर्तमानं दृष्टिगोचरं त्वदीय शरीर; सामने विद्यमान यह आपका शरीर। पुरा = पूर्वस्मिन् काले भवतः सिंहासनारूढदशाया; पूर्वकाल में, आपके सिंहासन पर आरूढ़ रहने पर। द्विजातिशेषेण = ब्राह्मणोच्छिष्टेन ब्राह्मणभुक्तावशिष्टेन; ब्राह्मणों के द्वारा भोजन करने के बाद शेष बचे हुए। अन्धसा = अन्नेन; अन्न से, अन्न के ग्रहण करने से। रामणोयकं = रमणीयतां मनोहरत्वं दर्शनोयतां पुष्टिं; रमणीयता, सुन्दरता, दर्शनोयता, पुष्टि को। उपनीतं = प्रापितं प्राप्तं; प्राप्त हुआ था। वन्यफलाशिनः = व्रतार्थं विपिनजातफलान्यश्नतः भक्षितुः वन्यफलभोजिनः; व्रत करने के लिए वन में उत्पन्न होने वाले फलों का भक्षण करने वाले, खाने वाले। ते = तव युधिष्ठिरस्य; आप युधिष्ठिर का। तद् वपुः = तत्प्रसिद्धं यत्नशतैः परिवर्धित तत्कमनोय शरीर; वह प्रसिद्ध अनेक प्रयत्नों के द्वारा संपुष्ट सुन्दर शरीर। अद्य = अधुना साम्प्रत वनवाससमये, अब इस वनवासकाल में, यशसा = कोर्त्या; यश, कोर्ति के। समं = साकं सार्धं सह; साथ। परं = अतिशयम्; अत्यधिक; अत्यधिक। कार्श्यं = कृशतां तनुतां खिन्नत्वं; दुर्बलत्वं; कृशता, दुर्बलता को। परैति = गच्छति प्राप्नोति प्राप्त हो रहा है ॥३९॥

संस्कृत व्याख्या—युधिष्ठिरस्य पूर्वापरे सम्पद्विपद्रूपे दशे निरूपिते अत्र। भो राजन् युधिष्ठिर ! पुरो वर्तमानं त्वदीयमिदं शरीर यत्पूर्वस्मिन् काले भवतः सिंहासनारूढदशायां मखेषु ब्राह्मणोच्छिष्टेनान्नभक्षणेन रमणीयतां प्राप्तं

व्रतार्थं विपिनजातकन्दमूलफलान्यश्नतस्तव युधिष्ठिरस्य तत्प्रसिद्धं यत्नशतैः परिवर्द्धितं कमनीयं शरीरं साम्प्रतं तव वनवासकाले कीर्त्या साकम् अतिशयां कृशतां प्राप्नोति ।

भावार्थः—यज्ञसम्पादनात्पुरा युधिष्ठिरस्य शरीरं मनोहरं पुष्टमासीद् ब्राह्मणाः प्रसन्ना आसन् कीर्तिरपि प्रथिता भवति स्म । किन्त्वधुना स स्वयमेव वन्यफलभोक्ता कमप्याश्रयं दातुं न शक्तः । एवं कीर्तिरपि न प्राप्यते । वपुर्यशश्चोभे क्षीयेते अधुना पूर्वं तु प्रचीयेते स्म । ३९॥

हिन्दी व्याख्या—युधिष्ठिर की पूर्व-अपर, सम्पत्ति-विपत्ति रूपी उभय दशाओं का चित्रण प्रस्तुत श्लोक में किया गया है ।

हे राजन् युधिष्ठिर ! सामने विद्यमान आपका यह शरीर जो पूर्वकाल में आपके सिंहासनारूढ रहने पर यज्ञों में ब्राह्मणों के भोजन कर लेने से शेष बचे हुए अन्न को ग्रहण करने से रमणीयता को प्राप्त हुआ था, व्रत करने के लिए वन में उत्पन्न हुए फलों का भक्षण करने वाले आपका वही प्रसिद्ध कमनीय शरीर अब इस वनवास काल में कीर्ति के साथ-साथ अत्यधिक क्षीणता, दुर्बलता को प्राप्त हो रहा है ।

भावार्थ— यज्ञसंपादन से पूर्वकाल में आप युधिष्ठिर का शरीर मनोहर तथा पुष्ट था, ब्राह्मणवृन्द प्रसन्न थे, कीर्ति का भी विस्तार हो रहा था । किंतु अब स्वयं आप ही कन्दमूल खाने वाले हैं । किसी को भी आश्रय देने में समर्थ नहीं है । कीर्ति की भी प्राप्ति नहीं हो रही है । इस तरह इस समय शरीर तथा यश दोनों ही क्षीण हो रहे है, जो पहले दोनों ही समृद्ध हो रहे थे ॥३९॥

टिप्पणी :

रामणीयकम् = रमणीयस्य भावः रामणीयकम् ।

रमणीयम् = √रम् + णिच् + अनीयर् ।

रामणीयकम् = रमणीय + वुञ् (अक) 'योपधात् गुरूपोत्तमाद् वुञ्'

द्विजातिशेषेण = द्वे जातो जन्मनो येषां, ते द्विजातयः । बहुव्रीहि ।

द्विजातीनां शेषः शेषं वा द्विजातिशेषम् तेन । षष्ठी तत्पुरुष ।

जातिः = √जन् + क्तिन् । शेषः = √शिष् + घञ् ।
अन्धसा = अद्यते इति अन्धस्, तेन । √अद + असुन् ।
वन्यफलाशिनः = वने भवं वन्यम् । वन्यं फलं वन्यफलम् । कर्मधारय ।
वन्यफलम् अश्नातीति वन्यफलाशी, तस्य । उपपद ।
वन्यम् = वन + यत् । फलाशी = फल + √अश् + णिनि कर्त्तरि ।
नृप = नॄन् पातीति नृपः, संबोधन । नृ + √पा + क ।
कार्श्यम् = कृशस्य भावः कार्श्यम् ।
कृशः = √कृश + क्त । कार्श्यम् = कृश् + ष्यञ् ।
यशसा = समम् के योग में तृतीया । 'सहयुक्तेऽप्रधाने'
उपनीतम् = उप + √नी + क्त कर्मणि ।
परैति = परा + √इ + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन ।
कोष :
पुरा = स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा—इत्यमरः ।
नृपः = नृपो भूपोऽवनीशश्च नृपतिर्भूपतिर्मतः—इति
द्विजः = विप्राण्डक्षत्रिया द्विजाः—इत्यमरः
यशः = यशः कीर्तिः समज्ञा च—इत्यमरः
वपुः = गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः—इत्यमरः ।
अन्धस् = भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री स दीदिविः—इत्यमरः
अलंकारः—दो वस्तुओं का एक साथ वर्णन होने से सहोक्ति अलंकार ।
छन्दः—वंशस्थ ।

अनारतं यौ मणिपीठशायिनावरञ्जयद्राजशिरःस्रजां रजः ।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ॥४०॥

घण्टापथ—अनारतमिति । अनारतम् अजस्रम् । मणिपीठशायिनौ मणिमयपादपीठस्थायिनौ यौ चरणौ राजशिरःस्रजां नमद्भूपालमौलिस्रजां रजः परागः अरञ्जयत् तौ ते चरणौ मृगैः द्विजैश्च तपस्विभिः आलूनशिखेषु छिन्नाग्रेषु बर्हिषां कुशानाम् । 'बर्हिः कुशहुताशयोः' इति विश्वः । वनेषु काननेषु निषीदतः तिष्ठतः ॥४०॥

अन्वयः—अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ चरणौ (प्राक्) राजशिरःस्रजां रजः अरञ्जयत् ते तौ (चरणौ अद्य) मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषां वनेषु निषीदतः ॥४०॥

शब्दार्थः—अनारतं = निरन्तरं सततं; निरन्तर, सतत रूप से। मणिपीठशायिनौ = मणिमयपादपीठस्थायिनौ रत्ननिर्मितपादपीठवर्तिनौ; मणिमय, रत्ननिर्मित पादपीठ, आसन पर शयन करने वाले, विद्यमान रहने वाले। यौ चरणौ = आपके जिन दोनों चरणों को। (प्राक् = पहले आपके राजसिंहासन पर आरूढ़ रहने पर)। राजशिरःस्रजां = भूपालमौलिवर्तिमालानां प्रणमन्महीपमौलिमाल्यानां शेखरस्थितपुष्पमालानां; प्रणाम करते हुए अधीनस्थ राजाओं के शिर पर स्थित पुष्पमालाओं का। रजः = परागः, पराग। अरञ्जयत् = अभूषयत् समलंचकार; रञ्जित, अलंकृत किया करता था। ते = तव युधिष्ठिरस्य; आप युधिष्ठिर के। तौ चरणौ) = तौ प्रसिद्धौ चरणौ पादौ; वे ही प्रसिद्ध चरण। (अद्य = अधुना तव वनवासकाले; अब इस समय आपके वनवास काल में)। मृगद्विजालूनशिखेषु=हरिणतपस्विजनच्छिन्नाग्रभागेषु, मृगैः हरिणैः द्विजैः ब्राह्मणैः आलूनाः छिन्नाः लुञ्चिताः अग्रभागाः येषां तेषु; हरिण तथा तपस्विजनों द्वारा काटे गए, तोड़े गए अग्रभाग वाले। बर्हिषां = कुशाना दर्भाणां; कुशों के। वनेषु = विपिनेषु काननेषु अरण्येषु; वनों, जङ्गलों में। निषीदतः = तिष्ठतः विचरतः; स्थित रहते हैं, भटकते रहते हैं ॥४०॥

संस्कृतव्याख्या—अत्र युधिष्ठिरस्य परापरे दशे निरूपिते।

निरन्तरं रत्ननिर्मितपादपीठवर्तिनौ भवतो यौ चरणौ पूर्वं तव राजसिंहासनारूढकाले प्रणमन्महीपमौलिवर्तिपुष्पमालानां परागोऽरञ्जयत् समलंचकार तव युधिष्ठिरस्य तावेव प्रसिद्धौ चरणौ साम्प्रतं तव वनवासकाले हरिणतपस्विजनच्छिन्नाग्रभागेषु कुशानां काननेषु तिष्ठतः इतस्ततः संचरतः। अर्थाद् एकदा यौ चरणौ मणिमयपीठशायिनौ राजमण्डलैः पूजार्हौ आस्ताम् अधुना तावेव कुशकण्टकाकीर्णं गहनं काननम् अधितिष्ठतः। एतादृशीं दुर्दशामनुभवन्नपि भवान् प्रतीकाररहितः स्वस्थ इत्याश्चर्यम् ॥४०॥

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में युधिष्ठिर को पूर्व-अपर दशाओं का वर्णन द्रौपदी कर रही है।

निरन्तर रूप से रत्ननिर्मित पादपीठ पर विराजमान रहने वाले आप

युधिष्ठिर के जिन दोनों चरणों को पूर्वकाल में आपके राजसिंहासन पर आरूढ़ रहने पर प्रणाम करते हुए अधीनस्थ राजाओं के शिर की पुष्पमाला का पराग रञ्जित किया करता था, आपके वे ही प्रसिद्ध दोनों चरण अब आपके इस वनवास काल में हरिणों तथा तपस्वियों द्वारा काटे गए अग्रभाग वाले कुशों के जंगलों में स्थित रहते हैं, इधर-उधर गमन करते हैं।

भावार्थ—पूर्वकाल में आपके जो चरण मणिमय पीठ पर विराजमान रहते थे, राजाओं के द्वारा पूजे जाते थे, वे ही आज कुशकण्टकों से भरे हुए एक जंगल से दूसरे जंगल में भटक रहे हैं। इस प्रकार की दुर्दशा का अनुभव करते हुए भी आप प्रतीकारशून्य हैं, यह अत्यन्त आश्चर्य तथा दुःख की बात है। यही द्रौपदी के कथन का अभिप्राय है ॥४०॥

टिप्पणी :

मणिपीठशायिनौ = मणिनिर्मित पीठं मणिपीठम्। शाकपार्थिवादिवत्। मणिपीठे शयाते इति मणिपीठशायिनौ। उपपद।

मणिपीठ + √शी + णिनि कर्तरि।

राजशिरःस्रजाम् = राज्ञां शिरांसि राजशिरांसि। षष्ठी तत्पुरुष।

(१) राजशिरस्थाः स्रजः राजशिर स्रजः, तासाम्। शाकपार्थिवादि।

(२) राजशिरःसु स्रजः राजशिरःस्रजः तासाम्। सुप्सुपा।

(३) राजशिरसां स्रजः राजशिरःस्रजः, तासाम्। षष्ठी तत्पुरुष।

स्रक् = सृज्यते इति। √सृज् + क्विन्। राजते इति, √राज् + कनिन्।

मृगद्विजालूनशिखेषु = मृगाश्च द्विजाश्च मृगद्विजाः। द्वन्द्व।

मृगद्विजैः आलूनाः मृगद्विजालूनाः। तृतीया तत्पुरुष। मृगद्विजालूनाः शिखाः येषु तानि मृगद्विजालूनशिखानि, तेषु। बहुव्रीहि।

द्विजः = द्वि + √जन् + ड। आलूना = आ + √लू + क्त—टाप्।

अनारतम् = न आरतम् अनारतम्। नञ् तत्पुरुष। आ + √रम् + क्त।

रजः = √रञ्ज् + असुन् ।

अरञ्जयत् = √रञ्ज् + णिच् + लङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

निषीदतः = नि + सद् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, द्विवचन ।

कोष :

अनारतम् = सततानारताश्रान्तसन्ततावरतानिशम्—इत्यमरः ।

मणिः = रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च—इत्यमरः ।

रजः = रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांशुर्ना न द्वयो रजः—इत्यमरः ।

चरणः = पादाग्रं प्रपदं पादः पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्—इत्यमरः ।

द्विजः = दन्तविप्राण्डजा द्विजाः—इत्यमरः ।

बर्हिः = बर्हिः कुशहुताशयोः—इति विश्वः ।

पीठम् = पीठमासनम्—इत्यमरः ।

स्रक् = माल्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि—इत्यमरः

अलंकारः—जकार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास । विषम अलंकार ।

छन्दः—वंशस्थ ।

द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः समूलमुन्मूलयतीव मे मनः ।
परैरपर्य्यासितवीर्य्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ॥४१॥

घण्टापथ—द्विषदिति । यत् अतः कारणादिय दशाऽवस्था । 'दशावर्त्तावव-स्थायाम्' इति—विश्वः । द्विषन्तो निमित्तं यस्याः सा द्विषन्निमित्ता शत्रुकृता । 'द्विषोऽमित्रे' इति शतृप्रत्ययः । ततः मे मनः समूल साशयं उन्मूलयतीव उत्पाटयतीव । दैविकी त्वापन्न दुःखायेत्याह—परैरिति । परैः शत्रुभिः अपर्यासिता अपर्यवितिता वीर्यसम्पत् येषां तेषां मानिनां पराभवो विपदप्युत्सव एवेति वैधर्म्येणार्थान्तरन्यासः । मानहानिर्दुःसहा न त्वापदिति भावः ॥४१॥

अन्वयः—यत् इयं दशा द्विषन्निमित्ता (तवास्ति) ततः मे मनः समूलम् उन्मूलयति इव । परैः अपर्य्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवः अपि उत्सवः एव (भवति) ॥४१॥

शब्दार्थः—यत् = यतो हि यस्मात्कारणात्; क्योंकि । इयं दशा = एषा विद्यमाना शोचनीया दशा अनुभूयमाना ईदृशी क्लेशबहुला वनवासरूपा विपत्तिः;

यह शोचनीया अवस्था, प्रत्यक्ष रूप में अनुभव की जाने वाली नाना क्लेशों से युक्त यह विपत्ति। द्विषन्निमित्ता = शत्रुजन्या शत्रुहेतुका शत्रुकौरवकारणप्राप्ता; शत्रु कौरव ही जिसके निमित्त है, शत्रुओं के कारण प्राप्त हुई। (तव युधिष्ठिर-स्यास्ति = आप युधिष्ठिर को है) । तत् = तस्मात्कारणात्; इसलिए । मे = मम द्रौपद्याः; मेरा, मुझ द्रौपदी का । मनः = मानसं चित्तं; मन, चित्त। समूलं = मूलसहितं साशयं साश्रयं समग्रं; समूल, पूर्णरूप से । उन्मूलयति इव = उत्पाटयति उत्क्षिपति उत्खातमूलं करोति इव; उखड़ सा रहा है, जड़ से उखड़ रहा है, टुकड़े-टुकड़े हो रहा है । परैः = अपरैः शत्रुभिः; शत्रुओं के द्वारा । अपर्य्यासित-वीर्य्यसम्पदां = अपर्यावर्तितपराक्रमसम्पत्तीनाम् अतिरस्कृतपौरुषैश्वर्याणाम् अनाक्रान्तपौरुषरूपधनानाम् अपर्य्यासिता अपराजिता अनाक्रान्ता वीर्यस्य पराक्रमस्य सम्पद् उत्कर्षो येषां तेषाम्; अनाक्रान्त, अपराजित पराक्रम रूप धन वाले, पौरुष रूपी जिनकी सम्पत्ति उलटी नहीं गई है, अभिभूत नहीं की गई है । मानिनां = मनस्विनां मानवतां; मनस्वियों, स्वाभिमानी पुरुषों के लिए । पराभवः अपि = पराजयः तिरस्कारः विपद् अपि; पराजय भी, विपत्ति की प्राप्ति भी । उत्सवः एव = हर्षोदयः सुखप्रदः हर्षस्य हेतुः इव; उत्सव की तरह । (भवति = होता है) ।।४१।।

संस्कृतव्याख्या = मनस्विनां मानभंगो दुःसहो भवति न तु पराभवो विपत्तिरितिरूपेण युधिष्ठिरं प्रतिकाराय प्रेरयति द्रौपदी ।

यतोहि भवतो युधिष्ठिरस्यानुभूयमाना क्लेशबहुला वनवासरूपा विपत्तिरेषा शत्रुकौरवहेतुकाऽस्ति । तस्मात्कारणान्मम द्रौपद्या मानसं मूलसहितम् उत्खातयतीव मां नितरां विषण्णां करोतीत्यर्थः । अपर्यावर्तितपराक्रमरूपधनानां मानवतां पुरुषाणां पराजयोऽपि हर्षोदयः इव भवति ।

भावार्थ :—भवतो विपत्तिरेषा शत्रुकारणाद् भवतः प्रमादाच्च न दैवात् । दैवादागताऽऽपत्तिर्न दुःखावहा भवति किंतु मानहानिस्तु दुःसहा । अतो भवता प्रतीकारः कर्त्तव्य इत्यभिप्रायः ।।४१।।

हिन्दी व्याख्या—स्वाभिमानी पुरुषों के लिए सम्मान का भंग असहनीय होता है, किन्तु विपत्ति नहीं—इस प्रकार प्रतीकार के लिए युधिष्ठिर को प्रेरित करती हुई द्रौपदी कहती है ।

क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में अनुभव की जाने वाली आपकी यह विपत्ति शत्रु कौरवों के कारण है। इसलिए मेरा मन समूल रूप से उखड़ रहा है अर्थात् मुझे अत्यधिक व्यथित कर रहा है। अपराजित पराक्रम रूप धन वाले स्वाभिमानी पुरुषों के लिए पराजय (विपत्ति की प्राप्ति) भी उत्सव के समान होता है।

भावार्थ—आपकी यह विपत्ति शत्रु कौरवों के कारण तथा आपके स्वकीय प्रमाद से है, दैव के कारण नहीं। दैव के प्रतिकूल होने से प्राप्त विपत्ति उतनी अधिक असह्य नहीं होती, जितनी अधिक मानहानि दुःसह होती है। अतः इस विपत्ति का प्रतीकार आपको करना चाहिये—यही द्रौपदी के कथन का अभिप्राय है ॥४१॥

टिप्पणी :

द्विषन्निमित्ता = द्विषन्तः निमित्तं यस्याः सा। बहुव्रीहि।

द्विषत् = √द्विष् + लट शतृ। 'द्विषोऽमित्रे' से शतृ।

समूलम् = मूलेन सह वर्तमानं समूलम्, तद्यथा स्यात्तथा।

अपर्य्यासितवीर्य्यसम्पदाम् = न पर्य्यासिता अपर्य्यासिता। नञ् तत्पुरुष।

वीरस्य भावः कर्म वा वीर्यम्। वीर्य्यमेव संपद् वीर्य्यसम्पद्। अपर्य्यासिता वीर्य्यसम्पद् येषां, ते। अपर्य्यासितवीर्य्यसम्पदः, तेषाम्। बहुव्रीहि।

पर्यासिता = (१) परि + √आस् + णिच् + क्त कर्मणि—टाप्।

(२) परि + √अस् (दिवादि) + णिच् + क्त कर्मणि—टाप्।

वीर्य्यम् = वीर + ष्यञ्। सम्पद् = सम् + √पद् + क्विप्।

मानिनाम् = मानः अस्ति येषां ते मानिनः, तेषाम्।

मानः = √मन + घञ भावे। अथवा √मन् + णिनि।

मानिनः = मान + इनि मत्वर्थे।

उन्मूलयति = उत् + √मूल (चुरादि) + णिच् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

पराभवः = परा + √भू + अप्।

उत्सवः = उद् + √सू + अप्।

ततः = तद् + तसिल्। हेतौ पञ्चमी।

कोषः

द्विषत् = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः—इत्यमरः ।
निमित्तम् = हेतुर्निमित्तकारणबीजनिदानानि हेतौ स्युः—इति ।
दशा = दशावर्त्तावस्थायाम्—इति विश्वः ।
मनः चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः—इत्यमरः ।
पराभवः = पराभवः परिभवः पराजय इतीर्यते—इति ।
उत्सवः = अथ क्षण उद्धर्षो मह उद्भव उत्सवः—इत्यमरः ।
अलंकार—पूर्वार्द्ध में उत्प्रेक्षा, उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास, म की असकृत आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास इन अलंकारों की संसृष्टि ।
छन्द—वंशस्थ ।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम् ।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ॥४२॥

घण्टापथ—विहायेति । हे नृप ! शान्तिं विहाय तत्प्रसिद्धं धाम तेजो विद्विषां वधाय पुनः सन्धेहि अङ्गीकुरु । प्रसीद । प्रार्थनायां लोट् । ननु शमेन कार्यसिद्धौ किं क्रोधेनेत्यत्राह—व्रजन्तीति । निस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय निर्जित्य शमेन क्रोधवर्जनेन सिद्धिं व्रजन्ति । भूभृतस्तु । न कैवल्यकार्यवद् राजकार्यं न शान्तिसाध्यमित्यर्थः ॥४२॥

अन्वयः—नृप ! शान्तिं विहाय विद्विषां वधाय तत् धाम पुनः सन्धेहि । प्रसीद । निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति । (किंतु) भूभृतः (शमेन सिद्धिं) न (व्रजन्ति) ॥४२॥

शब्दार्थः—नृप = भो राजन् युधिष्ठिर; हे राजन् युधिष्ठिर । शान्तिं = शान्तिमार्गं क्षमां तितिक्षां; शान्तिमार्ग को । विहाय = परित्यज्य छोड़कर । विद्विषां = सत्रूणां दुर्योधनादिकौरवाणां; शत्रुओं के, दुर्योधन इत्यादि कौरवों के । वधाय = विनाशाय; विनाश के लिए । तत् धाम = तत्प्रसिद्धं लोकविख्यातं शत्रुनाशनरूपं क्षात्रतेजः प्रतापं पौरुषं; शत्रुओं का विनाश करने वाले उस प्रसिद्ध क्षात्रतेज, प्रताप को । पुनः = भूयः; फिर से । सन्धेहि = धारय अङ्गीकुरु, धारण

कीजिए, अङ्गीकार कीजिए। प्रसीद = प्रसन्नो भव दीनत्वं परित्यज्य उत्साह-युक्तो भव; प्रसन्न हो जाइये, दीनता का परित्याग कर उत्साहयुक्त बन जाइये। निःस्पृहाः = निष्कामाः निराकाङ्क्षिणः; कामना, इच्छा से रहित। मुनयः = मननशीलाः संयमिनः तपस्विनः; तपस्वी लोग। शत्रून् = कामक्रोधलोभमोहादि-षड्रिपून्; काम-क्रोध-लोभ-मोह इत्यादि षड्विध शत्रुओं को। अवधूय = तिरस्कृत्य विजित्य; तिरस्कृत करके, जीत करके। शमेन = शान्त्या क्रोधवर्जनेन; शमनीति द्वारा, संयम द्वारा। सिद्धि = मोक्षाख्यां कैवल्यरूपां स्वरूपावाप्तिरूपां सिद्धि; मोक्षरूप सिद्धि को। व्रजन्ति = अधिगच्छन्ति प्राप्नुवन्ति; प्राप्त करते हैं। किंतु। भूभृतः = महीभृतः राजानः; राजा लोग। शमेन = शमनीत्या शत्रूनविनाश्य; शान्तिनीति का पालन करते हुए, शत्रुओं का बिना विनाश किए। सिद्धि = राज्य-प्राप्तिरूपां सिद्धि; राज्य की प्राप्ति रूपी सिद्धि को। न = नहि; नहीं। व्रजन्ति = लभन्ते प्राप्नुवन्ति; प्राप्त करते हैं ॥४२॥

संस्कृतव्याख्या—द्रौपदी युधिष्ठिरं प्रतिकाराय प्रेरयति।

भो राजन् युधिष्ठिर! शान्ति शमनीति परित्यज्य शत्रूणां दुर्योधनादि-कौरवाणां विनाशाय तत्प्रसिद्धं शत्रुनाशनरूपं पौरुषं पुनः धारय। प्रसन्नो भव दीनत्वं परित्यज्य उत्साहयुक्तो भव। निष्कामाः संयमिनस्तपस्विनः कामक्रोधलोभ-मोहादिषड्रिपून् विजित्य शान्त्या संयमेन मोक्षाख्यां सिद्धिमधिगच्छन्ति किन्तु महीभृतस्तु क्रोधवर्जनेन शत्रूनविनाश्य शमेन राज्यप्राप्तिरूपां सिद्धि न प्राप्नुवन्ति।

भावार्थः—मोक्षाख्या सिद्धिरिव राज्यप्राप्तिरूपा सिद्धिर्न संयमसाध्या। शत्रून् विनाश्य केवलं शमेन साम्राज्यप्राप्तिर्न संभवा। अतस्त्वम् अन्तःस्थं सहजं क्षात्रं तेजः आविष्कुरु इति रूपेण युधिष्ठिरं द्रौपदी प्रेरयति ॥४२॥

हिन्दी व्याख्या—प्रतीकार के लिए युधिष्ठिर को द्रौपदी प्रेरित करती है। हे राजन् युधिष्ठिर! शान्तिमार्ग का परित्याग करके शत्रु दुर्योधन इत्यादि कौरवों के विनाश के लिए, शत्रुओं का विनाश करने वाले उस प्रसिद्ध क्षात्रतेज को पुनः धारण कीजिए। आप प्रसन्न हो जाइये अर्थात् दीनता का परित्याग कर उत्साहयुक्त बन जाइए। कामना रहित तपस्वी लोग काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-

धामन् = गृहदेहत्विट्प्रभावा धामानि—इत्यमरः ।

धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः—इति विश्वः ।

भूभृत् = भूभृद् भूमिधरे नृपे—इत्यमरः ।

शत्रुः, द्विषत् = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः ।

द्विड्विपक्षाहितामित्रदस्युशात्रवशत्रवः ॥ इत्यमरः

सिद्धिः = सिद्धिस्तु मोक्षे निष्पत्तियोगयोः—इति हैमः

मुनिः = वाचंयमो मुनिः—इत्यमरः ।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास, वृत्त्यनुप्रास ।

छन्दः—वंशस्थ ।



पुरःसरा धामवतां यशोधनाः सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम् ।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं निराश्रया हन्त हता मनस्विता ॥४३॥

घण्टापथ—पुर इति । किं च धामवतां तेजस्विनाम् । परनिकारासहिष्णूनामित्यर्थः । पुरः सरन्तीति पुरःसराः अग्रेसराः । 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' इति टप्रत्ययः । यशोधना भावदृशाः । सुदुःसहम् अतिदुःसहम् ईदृशम् उक्तप्रकारं निकारं पराभवं प्राप्य रतिं सन्तोषम् अधिकुर्वते स्वीकुर्वते चेत्तर्हि । हन्त इति खेदे । मनस्विताऽभिमानिता निराश्रया सती हता । तेजस्विजनैकशरणत्वान्मनस्वितायाः इत्यर्थः । अतः पराक्रमितव्यमिति भावः । यद्यप्यत्र प्रसहनस्याऽगतेरधिपूर्वात् करोतेः 'अधेः प्रसहने' इत्यात्मनेपदं न भवति । 'प्रसहनं परिभवः' इति काशिका । तथाप्यस्याकर्त्रभिप्रायविवक्षायामेव प्रयोजकत्वात् कर्त्रभिप्राये 'स्वरितञितः'—इत्यात्मनेपदं प्रसिद्धम् ॥४३॥

अन्वयः—धामवतां पुरः सराः यशोधनाः भवादृशाः सुदुःसहम् ईदृशं निकारं प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत् (तर्हि) हन्त मनस्विता निराश्रया (सती) हता ॥४३॥

में । पुरःसराः = अग्रेसराः अग्रगामिनः प्रमुखाः; अग्रणी, अग्रगामी, प्रमुख । यशोधनाः = कीर्तिधनाः कीर्तिवित्ताः कीर्तिसर्वस्वाः; कीर्ति रूपी धनवाले, यश को ही सर्वस्व मानने वाले । भवादृशाः = भवत्सदृशाः महामहिमवन्तः युधिष्ठिरोपमाः; आपके सदृश महानुभाव । सुदुःसहं = अतिदुःसहम् अतिशयेन असह्यम् अतिशोच्यं; अत्यन्त असहनीयः । ईदृशं = एतादृशम् एवं विधम् उक्तप्रकारं; इस प्रकार के, पहले वर्णन किए गए । निकारं = निकृष्टीकरणं पराभवं शत्रुकृततिरस्कारम् अनादरं; पराभव, तिरस्कार, अनादर को । प्राप्य = अधिगम्य अनुभूय; प्राप्त करके, अनुभव करके । रतिं = प्रीतिं सन्तोषं, प्रीति, सन्तोष को । अधिकुर्वते = स्वीकुर्वते मन्यन्ते; स्वीकार कर लेवें । चेत् = यदि । (तर्हि = तो) । अन्त = खेदे; दुःख है । मनस्विता = स्वाभिमानिता तेजस्विता; स्वाभिमानिता । निराश्रया (सती) = निराधारा निरवलम्बा आश्रयहीना निर्मूला सती; आश्रयहीन हुई, शरण रहित होकर । हता = विनष्टा मृता मृतकल्पा; विनष्ट हो गई, मृत के सदृश हो जाएगी ॥४३॥

संस्कृतव्याख्या—पराक्रम एवोचितो न सामनीतिरिति युधिष्ठिरं प्रतीकाराय प्रेरयन्ती द्रौपदी कथयति ।

तेजस्विनामग्रगामिनरुत्कृष्टशक्तिशालिनः कीर्तिधना भवद्युधिष्ठिरोपमाः अर्थात् सर्वसाधनसम्पन्ना महानुभावाः यद्यतिशयेन असह्यं राज्यापहरणं वनवासादिरूपं शत्रुकृतम् एतादृशं पराभवं प्राप्यानुभूय सन्तोषं स्वीकुर्वते तर्हि हन्त स्वाभिमानिता निरवलम्बा सती विनष्टा मृतकल्पा ।

भावार्थः—पराक्रमशालिनोऽपि पुरुषा यदि शत्रुकृतपराभवं प्राप्य सन्तुष्टा भवेयुर्न प्रतिकुर्युस्तदा मनस्विजनैकशरणा मनस्विता कुत्र तिष्ठतु । शरणाभावे मृतैव वराकी ॥४३॥

हिन्दीव्याख्या—शत्रु के प्रति पराक्रम का प्रदर्शन ही उचित है, सामनीति का प्रयोग नहीं—इस प्रकार युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित करती हुई द्रौपदी कहती है ।

तेजस्वियों में अग्रगामी, कीर्ति रूपी धन वाले आप युधिष्ठिर के समान सभी साधनों से सम्पन्न महानुभाव अत्यन्त असहनीय राज्यापहरण, वनवास

इत्यादि शत्रुद्वारा प्रदान किए गए इस प्रकार के पराभव को प्राप्त करके भी यदि सन्तोष को स्वीकार कर लेवें तो अत्यन्त दुःख है कि स्वाभिमानिता आश्रयहीन हुई विनष्ट हो गई।

भावार्थ—पराक्रमशाली पुरुष भी यदि शत्रु द्वारा किए गए पराभव को प्राप्त कर सन्तुष्ट हो जावें और प्रतीकार न करें तो मनस्वियों के ही शरण में रहने वाली मनस्विता बेचारी किसकी शरण में रहेगी। वह तो नष्ट हो ही जाएगी ॥४३॥

टिप्पणी—

पुरःसराः = पुरः सरन्तीति पुरःसराः। पुरस् + √सृ + ट कर्त्तरि।
'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' से ट प्रत्यय।

धामवताम् = धाम अस्ति एषामिति। धामन् + मतुप्।
'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' से मतुप् का वतुप्।

यशोधनाः = यशः एव धनं येषां, ते। बहुव्रीहि।

सुदुःसहम् = अतिशयेन दुःसहं सुदुःसहम्। प्रादि तत्पुरुष। दुर् + √सह् + खल्।

मनस्विता = प्रशस्तं मनः अस्ति एषामिति मनस्विनः। मनस्विनां भावो मनस्विता। मनस् + विनि मत्वर्थे = मनस्विन् + तल्—टाप्।

निकारम् = नि + √कृ + घञ्, तम्;

निराश्रया = निर्गतः आश्रयो यस्याः सा, निराश्रया।

भवादृशाः = भवान् इव दृश्यन्ते ये ते भवादृशाः। उपपद तत्पुरुष।
भवत् + √दृश् + क्स, क्विप्, कञ्।

प्राप्य = प्र + √आप् + क्त्वा—ल्यप्।

हृता = √हृ + क्त—टाप्।

रतिम् = √रम् + क्तिन्। ताम्।

अधिकुर्वते = अधि + √कृ + लट् लकार; प्रथम पुरुष, बहुवचन।

कोष :

पुरःसरः = पुरःसरा अग्रगण्या धुरीणाश्च पुरोगमाः—इति

निकारः = निकारो हि तिरस्कारोऽपमानश्च पराभवः—इति

निकारः स्यात्परिभवे धान्यस्योत्क्षेपणेऽपि च—इति धरणिः

धामन् = गृहदेहत्विट्प्रभावा धामानि—इत्यमरः

धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः—इति विश्वः

हन्त—हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः—इत्यमरः

यशः = यशः कीर्तिः समज्ञा च—इत्यमरः ।

अलंकारः—अर्थान्तरन्यास ।

छन्दः—वंशस्थ ।



अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम् ।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम् ॥४४॥

घण्टापथ—अथेति । अथ पक्षान्तरे निरस्तविक्रमः सन् चिराय चिरकालेनापि क्षमां क्षान्तिमेव 'क्षितिक्षान्त्योः क्षमा' इत्यमरः । सुखस्य साधनं पर्य्येषि अवगच्छसि तर्हि लक्ष्मीपतिलक्ष्म राजचिह्नं कामुर्कं विहाय । धरतीति धरः । पचाद्यच् । जटानां धरो जटाधरः सन् इह वने पावकं जुहुधि । पावके होमं कुर्वित्यर्थः । अधिकरणे कर्मत्वोपचारः । विरक्तस्य किं धनुषेत्यर्थः । 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' ॥४४॥

अन्वयः—अथ निरस्तविक्रमः (सन्) चिराय क्षमाम् एव सुखस्य साधनं पर्येषि । (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं विहाय जटाधरः सन् इह पावकं जुहुधि ॥४४॥

शब्दार्थः—अथ = यदि पक्षान्तरे; इसके अनन्तर, अब भी, यदि । निरस्त विक्रमः (सन्) = परित्यक्तपराक्रमः त्यक्तपौरुषः निरस्तस्त्यक्तो विक्रमः परा-

क्रमो येन स निरस्तविक्रमः उत्साहरहितः सन् त्वं; पराक्रम का परित्याग करने वाले, पौरुष उद्योगरहित आप युधिष्ठिर। चिराय = चिरं बहुकालपर्यन्तं; चिरकाल तक, सभी प्रकार से। क्षमां = क्षान्ति शान्ति सहनशीलतां; क्षमा, शान्ति, सहनशीलता को। एव = निश्चयेन; ही, निश्चित रूप से। सुखस्य = सन्तोषस्य कल्याणस्य आनन्दस्य; सन्तोष, कल्याण, आनन्द का। साधनं = करणं, हेतुम् उपायं प्रापकं; करण, प्रदान करने वाला उपाय। पर्येषि = जानासि मन्यसे अवगच्छसि; जानते हो, समझते हो। (तर्हि = तो)। लक्ष्मीपति-लक्ष्म = राजचिह्नं नृपचिह्नं, लक्ष्म्याः राजलक्ष्म्याः पतिः स्वामी लक्ष्मीपतिः तस्य लक्ष्म चिह्नमिति राजत्वबोधकं; राजा के चिह्न, राजत्व का बोध कराने वाले चिह्न। कार्मुकं = धनुः चापं; धनुष को। विहाय = परित्यज्य संत्यज्य; परित्याग करके। जटाधरः सन् = जटिलः सन् गृहीततापसवेषः सन्; जटाधारी बन कर, तापस का वेष धारण करके। इह = अत्र वने अस्मिन् अरण्ये; यहाँ पर इस वन में। पावकं = वह्निम्; अग्नि को जुहुधि = तर्पय, पावके हवनं कुरु; अग्नि में हवन कीजिए, अग्नि को तृप्त कीजिए ॥४४॥

संस्कृतव्याख्या—सामनीतिमाक्षिपन्ती व्यङ्ग्यरूपेण युधिष्ठिरं प्रतीकाराय प्रेरयन्ती द्रौपदी कथयति।

यदि परित्यक्तपराक्रमः उत्साहरहितः सन् त्वं चिरकालपर्यन्तं शान्तिमेव सन्तोषस्य साधनमुपायमवगच्छसि तर्हि राजचिह्नं राजत्वबोधकं चिह्नं कोदण्डं परित्यज्य जटिलः सन् गृहीततापसवेषः सन् वनेऽस्मिन् वह्निं तर्पय पावके हवनं कुरु।

भावार्थः—शक्तिसम्पन्नस्त्वं यदि सामनीतिमेव सुखसम्पादिकां मन्यसे तर्हि कार्मुकं संत्यज्य मुनिरिवाग्निहोत्रं कुरु। यतो हि धनुर्धारणं तु योद्धुकामानां विजिगीषूणामेव न्याय्यं न तु शान्तिमार्गावलम्बिनां भवादृशाम्। अतो मुञ्च तद्धनुरिति रूपेण धनुर्धारणं प्रेरयति तं द्रौपदी व्यङ्ग्यरूपेण ॥४४॥

हिन्दीव्याख्या—सामनीति की आलोचना करती हुई व्यङ्ग्य रूप से युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित करती हुई द्रौपदी कहती है।

और अब भी यदि पराक्रमरहित होकर आप चिरकाल तक, सभी प्रकार से शान्ति को ही सन्तोष का साधन स्वीकार करते हैं, तो राजत्व का बोध कराने वाले राजचिह्न धनुष का परित्याग करके जटा को धारण कर अर्थात् तपस्वी के वेष को धारण कर इस वन में अग्नि में हवन कीजिए।

भावार्थ—शक्तिसम्पन्न आप युधिष्ठिर यदि सामनीति को ही सुख प्रदान करने वाली समझते हो तो धनुष का परित्याग करके मुनि की तरह अग्निहोत्र कीजिए। क्योंकि युद्ध की कामना वाले विजयाभिलाषी राजाओं के लिए ही धनुषधारण करना उचित है और शान्ति मार्ग का अवलम्बन करने वाले आप सदृश राजाओं के लिए नहीं। अतः धनुष का परित्याग कर दीजिए—इस प्रकार व्यङ्ग्य रूप से धनुष धारण के लिए युधिष्ठिर को द्रौपदी प्रेरित करती है ॥४४॥

टिप्पणी—

निरस्तविक्रमः = निरस्तः विक्रमः येन सः निरस्तविक्रमः बहुव्रीहि।

निरस्तः = निर् + √अस् + क्त कर्मणि।

विक्रमः = वि + √क्रम् + घञ् भावे।

लक्ष्मीपतिलक्ष्म = लक्ष्म्याः पतिः लक्ष्मीपतिः। षष्ठी तत्पुरुष।

तस्य लक्ष्म लक्ष्मीपतिलक्ष्म। षष्ठी तत्पुरुष।

जटाधरः = धरतीति धरः। जटायाः धरः जटाधरः। षष्ठी तत्पुरुष।

धरः = √धृ + अच् कर्तरि। 'पचाद्यच्'

पावकम् = पुनाति इति पावकः; तम्। √पू + ण्वुल्।

क्षमाम् = √क्षम् + अङ् भावे—टाप्। ताम्।

कार्मुकम् = कर्मन् + उकञ्।

विहाय = वि + √हा + क्त्वा—ल्यप्।

साधनम् = √साध् + ल्युट् करणे।

पर्येषि = परि + √इ + लट् लकार मध्यम पुरुष, एकवचन ।
जुहुधि = √हु + आज्ञालोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन ।

कोष :

क्षमा = क्षितिक्षान्त्योः क्षमा—इत्यमरः ।
चिराय = चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः—इत्यमरः ।
सुखम् = स्यादानन्दथुरानन्दः शर्मशातसुखानि च—इत्यमरः
कार्मुकम् = शरासनं कार्मुकं च चापं धनुरपीर्यते—इति
धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्—इत्यमरः
पावकः = आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः—इत्यमरः ।
लक्ष्म = लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः—इत्यमरः ।
अलंकारः—छेकानुप्रास ।
छन्दः—वंशस्थ ।

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः ।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥४५॥

घण्टापथ—नेति । परेषु शत्रुषु निकृतिपरेषु निकृतिः परं प्रधानं येषु तेषु तथोक्तेषु अपकारतत्परेषु सत्सु भूरिधाम्नो महौजसः प्रतीकारक्षमस्य ते तव समय स्त्रयोदशसंवत्सरान् वने वत्स्यामीत्येवंरूपा संवित् । 'समयाः शपथाचार-कालसिद्धांतसंविदः' इत्यमरः । तस्य परिरक्षणं प्रतीक्षणं न क्षमं न युक्तम् । 'युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः । हि यस्मात् विजयार्थिनो विजगीषवः क्षितीशाः अरिषु विषये सोपधि सकपटं यथा तथा । 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भो-पधयश्छद्मकैतवे' इत्यमरः । सन्धिदूषणानि विदधति । केनचिद्व्याजेन दोषमापाद्य सन्धिं दूषयन्ति । विघटयन्तीत्यर्थः । शक्तस्य हि विजिगीषोः सर्वथा कार्यसाधनं प्रधानमन्यत्समयरक्षणादिकमशक्तस्येति भावः । अर्थान्तरन्यासोऽ-लङ्कारः पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥४५॥

अन्वयः—परेषु निकृतिपरेषु (सत्सु) भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं न

क्षमम् । हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति ॥४५॥

शब्दार्थः—परेषु = शत्रुषु दुर्योधनादिकौरवेषु; शत्रु दुर्योधन इत्यादि कौरवों के । निकृतिपरेषु (सत्सु) = अपकारतत्परेषु छलकपटकौटिल्यादिपरायणेषु सत्सु; छल-कपट-कुटिलता इत्यादि अपकार में परायण, लगे रहने पर । भूरिधाम्नः = शत्रुसंहारसमर्थकस्य; प्रभूत तेजवाले अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ । ते = तव भवतो युधिष्ठिरस्य; आप युधिष्ठिर का । समयपरिरक्षणं प्रतिज्ञापरिपालनं 'त्रयोदश वर्षाणि वने वत्स्यामी' ति प्रतिज्ञातशपथप्रतीक्षणं, प्रतिज्ञा का परिपालन, 'त्रयोदश वर्ष वन में निवास करूँगा' पूर्व की गई प्रतिज्ञा की प्रतीक्षा करना । न = नहि; नहीं । क्षमं = युक्तम् उचितं; युक्त, उचित है । हि = यतः यस्मात्कारणात्; क्योंकि । विजयार्थिनः = विजिगीषवः शत्रुपराजय-कामुकाः; विजय की कामना रखने वाले । क्षितीशाः = भूपतयः; राजालोग । अरिषु = शत्रुविषये; शत्रुओं के विषय, सम्बन्ध में । सोपधि = सकपटं सव्याजं छलेन सहितं; कपटपूर्वक, किसी बहाने से । सन्धिदूषणानि = कृतसन्धिदोषान्, मैत्रीच्छिद्राणि; पूर्व की गई सन्धि में दोषों को । विदधति = सम्पादयन्ति उद्भावयन्ति उपस्थापयन्ति; उत्पन्न करते हैं ॥४५॥

संस्कृतव्याख्या—राज्यस्य पुनरधिगमने कूटनीतिरेवोपकारिणीति रूपेण युधिष्ठिरं प्रतीकाराय प्रेरयति द्रौपदी ।

शत्रुषु दुर्योधनादिकौरवेषु छद्मकपटकौटिल्याद्यपकारपरायणेषु सत्सु महा-पराक्रमशालिनः शत्रुसंहारसमर्थस्य भवतो युधिष्ठिरस्य प्रतिज्ञापालनं 'त्रयोदश वर्षाणि वने वत्स्यामी'ति पूर्वकृतशपथप्रतीक्षणं नोपयुक्तं समीचीनम् । यतो विजिगीषवो भूपतयः शत्रुविषये सकपटं छलसहितं कृतसन्धिदोषान् मैत्रीभङ्गानु-पस्थापयन्ति अर्थात् कमपि व्याजमभिनीय सन्धिं दूषयन्ति ।

भावार्थः—विजिगीषवो राजानः केनचिद् व्याजेन सन्धिं दूषयन्ति । यतः कार्यसाधनमेव शक्तिमतां सर्वथा श्रेयः । अशक्तास्तु समयरूपप्रतिज्ञायाः पालनं

कुर्वन्ति । अतः प्रतिज्ञामनादृत्य भवद्भिः प्रतीकारः कर्त्तव्य इतिरूपेण तं प्रेरयति द्रौपदी ॥४५॥

हिन्दीव्याख्या—नष्ट राज्य की पुनः प्राप्ति में कुटनीति ही उपकारिणी है; इस रूप से युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए द्रौपदी प्रेरित करती है।

शत्रु दुर्योधन इत्यादि कौरवों के छल-कपट आदि अपकार में परायण रहने पर महान् पराक्रमी अर्थात् शत्रुओं का संहार करने में समर्थ आप युधिष्ठिर के लिए 'त्रयोदश वर्ष वन मे निवास करूँगा' इस प्रकार पहले की गई प्रतीज्ञा का पालन करना उचित नहीं है। क्योकि विजय की अभिलाषा रखने वाले राजा लोग शत्रुओं के विषय मे कपटपूर्वक सन्धि में दोषों को उत्पन्न करते है अर्थात् किसी व्याज से सन्धि को भंग कर देते है।

भावार्थ—विजिगीषु राजा लोग किसी व्याज से पूर्व की गई सन्धि को दूषित कर देते है। क्योकि किसी भी प्रकार से प्रयोजन की सिद्धि शक्तिशालियो का लक्ष्य होता है। किन्तु असमर्थ व्यक्ति प्रतिज्ञा का पालन करते है। अतः समर्थ आप युधिष्ठिर को प्रतिज्ञा का ध्यान न रखते हुए प्रतीकार अवश्य करना चाहिए; इस रूप से द्रौपदी प्रेरित करती है ॥४५।

टिप्पणी :

समयपरिरक्षणम् = समयस्य परिरक्षणं समयपरिरक्षणम्। षष्ठी तत्पुरुष।

समयः = सम् + √इ + अच् भावे। परिरक्षणम् = परि + √रक्ष् + ल्युट् भावे। निकृतिपरेषु = निकृतिः परं येषां ते निकृतिपराः, तेषु। बहुव्रीहि। भावे सप्तमी।

'यस्य च भावेन भावलक्षणम्'

निकृतिः = नि + √कृ + क्तिन् भावे।

भूरिधाम्नः = भूरि धाम यस्य सः भूरिधामा, तस्य। बहुव्रीहि।

विजयार्थिनः = विजयम् अर्थयन्ते इति विजयार्थिनः।

वि + √जि + अच् भावे = विजय + अर्थ √णिनि कर्त्तरि।

क्षितीशाः = क्षितेः ईशा क्षितीशाः । षष्ठी तत्पुरुष ।

क्षितिः = √क्षि + क्तिन् । ईशः = √ईश् + क ।

सोपधि = उपधीयते इति उपधिः, तेन सह वर्तमानम् । बहुव्रीहि ।

तद्यथा स्यात्तथा—क्रियाविशेषण ।

उपधिः = उप + √धा + कि भावे ।

सन्धिदूषणानि = सन्धेः दूषणानि सन्धिदूषणानि, तानि । षष्ठी तत्पुरुष ।

सन्धि = सम् + √धा + कि । दूषणम् = √दुष् + णिच् + ल्युट् भावे ।

क्षमम् = क्षमते इति । √क्षम् + अच् ।

विदधति = वि + √धा + लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

कोष :

निकृतिः = कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे ।

कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यम् ॥—इत्यमरः

क्षमम् = युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु—इत्यमरः

समयः = समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः—इत्यमरः

भूरि = पुरुहूः पुरु भूयिष्ठं स्फारं भूयश्च भूरि च—इत्यमरः

प्रचुरं भूरि विज्ञेयं भूरि काञ्चनमेव—अनेकार्थमञ्जरी ।

अलंकारः—अर्थान्तरन्यास, परेषु परेषु में यमक ।

छन्दः—पुष्पिताग्रा

'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'

प्रथम तथा तृतीय चरण में =	नगण	नगण	रगण	यगण	
	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ	
द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में =	नगण	जगण	जगण	रगण	गुरु
	।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ॥४६॥

इति भारविकृतौ महाकाव्ये किरातार्जुनीये प्रथमः सर्गः ॥१॥

घण्टापथः—विधीति । विधिर्दैवम् । 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः । समयः कालस्तयोर्नियोगान्नियमनाद्धेतोः । तयोर्दुरतिक्रमत्वादिति भावः । अगाधे दुस्तरे । आपत्पयोधिरिवेत्युपमितसमासः । दिनकृतमिवेति वक्ष्यमाणानुसारात्तस्मिन्नापत्पयोधौ मग्नम् । सूर्योऽपि सायं सागरे मज्जति परेद्युरुन्मज्जतीत्यागमः । दीप्तिः प्रताप आतपश्च तस्याः संहारेण जिह्ममप्रसन्नम् । शिथिलवसुं शिथिलधनमन्यत्र शिथिलरश्मिम् । 'वसुर्देवेऽग्नौ रश्मौ च वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती । 'शिथिलबलम्' इति पाठे तूभयत्रापि शिथिलशक्तिकमित्यर्थः । रिपुस्तिमिरमिवेति रिपुतिमिरमुदस्य निरस्योदीयमानमुद्यन्तम् । 'ईङ् गतौ' इति धातोर्दैवादिकात्कर्तरि शानच् । त्वां दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीर्भूयः समभ्येतु भजतु । 'आशिषि लिङ्लोटौ' इति लोट् । चमत्कारकारितया मङ्गलाचरणरूपतया च सर्गान्त्यश्लोकेषु लक्ष्मीशब्दप्रयोगः । यथाह भगवान्भाष्यकारः—'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति' इति । पूर्णोपमेयम् । मालिनी वृत्तम् । सर्गान्तत्वाद्वृत्तभेदः । यथाह दण्डी 'सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः । सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम् ॥' इति ।

अथ कविः काव्यवर्णनीयाख्यानपूर्वकं सर्गपरिसमाप्तिं कथयति—इतीत्यादि । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । भारविकृताविति कविनामकथनम् । महाकाव्य इति महच्छब्देन लक्षणसम्पत्तिः सूचिता । किरातार्जुनीय इति काव्यवर्णनीययोः कथनम् । प्रथमः सर्गः समाप्त इति शेषः । एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । किरातार्जुनावधिकृत्य ग्रन्थः किरातार्जुनीयम् । 'शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः' इति द्वन्द्वाच्छप्रत्ययः । राघवपाण्डवीयमितिवत् । तथा ह्यर्जुन एवात्र नायकः ।

किरातस्तु तदुत्कर्षाय प्रतिभटतया वर्णितः। यथाह दण्डी—'वंशवीर्यप्रतापादि वर्णयित्वा रिपोरपि। तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः' ॥ इति। अथात्र सङ्ग्रहः—'नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजस्तस्योत्कर्षकृते त्ववर्ण्यततरां दिव्यः किरातः पुनः। शृङ्गारादिरसोऽङ्गमत्र विजयो वीरः प्रधानो रसः शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्' इति ॥४६॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितायां किरातार्जुनीयकाव्यव्याख्यानां घण्टापथसमाख्यायां प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥१॥



अन्वयः—विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्मं शिथिलवसुं रिपुतिमिरम् उदस्य दिनादौ उदीयमानं दिनकृतम् इव (विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्मं शिथिलवसुं रिपुतिमिरम् उदस्य दिनादौ उदीयमानं) त्वां लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु ॥४६॥

शब्दार्थः—सूर्यपक्षे = सूर्य के पक्ष में।

विधिसमयनियोगात् = देवकालनियमात् दैवकालानुरोधात् दैवशात् संध्यादिकालवशाच्च; विधाता और समय के नियम के अनुसार, विधि और समय के प्रभाव से, पूर्वनिर्धारित कालचक्र के कारण। अगाधे = गम्भीरे अपारे अपरिमेये अतलस्पर्शे दुरवगाधे; अत्यन्त गम्भीर, अथाह। आपत्पयोधौ = विपत्स्वरूपे सागरे विपत्तिबहुले पश्चिमे समुद्रे, विपत्ति स्वरूप महासागर में, विपत्तिबहुल पश्चिमी समुद्र में। मग्नं = पतितं सायंकाले संध्यासमये निपतितं, "सूर्योऽपि सायं सागरे मज्जति परेद्युरुन्मज्जति" इति प्रसिद्धिः; डूबे हुए, सायं काल में गिरकर। दीप्तिसंहारजिह्मं = आतपविनाशेन मलिनम् अप्रसन्नं रश्मिसंकोचेन निस्तेजस्कं कान्तिरहितं; प्रकाश के विनाश होने से मलिन; प्रकाशरहित, आभारहित। शिथिलवसुं = शिथिलरश्मि परिक्षीणतेजसं मन्दकिरणं, शिथिल हुई किरणों वाले संकुचित हुई किरणों वाले। रिपुतिमिरं = शत्रुभूतमन्धकारं शत्रुसदृशान्धकारं रिपुरूपं यत्तिमिरं; शत्रु सदृश अन्धकार को। उदस्य = निरस्य निराकृत्य दूरीकृत्य; निराकरण करके, दूर करके। दिनादौ = दिवसादौ प्रातःकाले प्रभातसमये; दिन के प्रारम्भ में, प्रभात काल में। उदीयमानं = उद्यन्तम् उदयं प्राप्नुवन्तं गगनाङ्गणम्

उद्गच्छन्तं; उदित होते हुए, उदय को प्राप्त करते हुए, गगनाङ्गण में आरोहण करते हुए। दिनकृतमिव = दिनं करोतीति भगवन्तं भुवनभास्करं दिनमणिं रविं सूर्यमिव: भगवान् सूर्य की तरह।

युधिष्ठिरपक्षे = युधिष्ठिर के पक्ष में।

विधिसमयनियोगात् = दैवकालानतिक्रमणात् दुरतिक्रमत्वात् भाग्यप्रतिज्ञावशात् दुर्भाग्यदु:समयप्रभावात्; भाग्य तथा समय का क्रम अनतिक्रमणीय होने से, भाग्य तथा समय के नियम के अनुसार। अगाधे = गम्भीरे अपरिमेये अनन्ते; गम्भीर, अपरिमित, अनन्त। आपत्पयोधौ = विपत्तिसागरे दु:खार्णवे समुद्रवदनन्ते विपत्तिजाले; दु:ख के समुद्र में, समुद्र की तरह अपार विपत्ति में। मग्नं = विपन्नं निमज्जमानं; डूबे हुए, पड़े हुए, दु:ख का, अति दीनहीन दशा का अनुभव करते हुए। दीप्तिसंहारजिह्मं = प्रतापसंहारेणाप्रसन्नं म्लानं खिन्नं प्रभावक्षयात् खिन्नमानसं; प्रताप के संहार से अप्रसन्न, प्रभाव-पराक्रम के विनाश, कम होने से मलिन, दु:खी। शिथिलवसुं = शिथिलधनं विनष्टधनं दरिद्रकल्पं; विनष्ट हुए धन वाले, निर्धन हुए। रिपुतिमिरं = अन्धकारवद्भीषणं दुस्तरं शत्रुसमूहं; अन्धकार के सदृश भीषण शत्रु समूह को। उदस्य = विनाश्य; नष्ट करके। दिनादो = शुभसमये शुभसमयसमागमे; शुभ समय के आ जाने पर। उदीयमानं = उद्यन्तम्, उन्नतिं प्राप्नुवन्तम्, अभ्युदयाभिमुखगमनशीलं; उन्नति, उत्कर्ष, अभ्युदय को प्राप्त करते हुए। त्वां = भवन्तं युधिष्ठिरं, आप युधिष्ठिर को। लक्ष्मी: = तेज: श्री: दिवसशोभा राजलक्ष्मी:, सम्पत्ति:; दिवस की शोभा राजलक्ष्मी। भूय: = पुनरपि; फिर से। समभ्येतु = समागच्छतु समाश्रयतु प्राप्नोतु; प्राप्त करे, आश्रय ग्रहण करे ॥४६॥

संस्कृतव्याख्या—अत्र श्लोकेऽस्मिन् द्रौपदी प्रतापक्षयात् परिदूयमानमानसं भ्रष्टराज्यं युधिष्ठिरं समाश्वास्य तस्य समृद्धयर्थम् अभ्युदयाय मङ्गलं कामयते।

दैवकालनियमाद् अतलस्पर्शे विपत्तिस्वरूपे पश्चिमे समुद्रे संध्यासमये निपतितं रश्मिसंकोचेन निस्तेजस्कं मन्दतेजसं शत्रुभूतमन्धकारं निराकृत्य अन्येद्यु: प्रभातकाले उदयं प्राप्नुवन्तं गगनाङ्गणमुद्गच्छन्तं दिनमणिमिव दुर्भाग्यदु:समय-

प्रभावाद् गम्भीरेऽपरिमेये समुद्रवदनन्ते विपत्तिजाले विपन्नं निमज्जमानं प्रताप-संहारेणाप्रसन्नं खिन्नमानसं विनष्टधनं दरिद्रकल्पमन्धकारवद्भीषणं दुस्तरं शत्रुसमूहं विनाश्य शुभसमयसमागमेऽभ्युदयाभिमुखगमनशीलं भवन्तं राजानं युधिष्ठिरं राजलक्ष्मीः पुनरपि समागच्छतु ।

भावार्थः—सायं सूर्यः पश्चिमाब्धौ निमज्जति प्रातश्च पूर्वाम्बुधेरुद्गच्छतीति कविसमयः। यथा भानुरपि प्रदोषसमये परिक्षीणरश्मिः सन् पश्चिमे समुद्रे निमज्जमान इव दृश्यते पुनश्च व्यपगतायां रात्रौ प्रभाते ध्वान्तं विदीर्य पूर्वस्यां दिशि उद्गच्छति। एतादृशं तं दिनकरं यथा दिवसशोभा पुनः समाश्रयति समलंकरोति एवमेव भाग्यवैपरीत्यात् कालप्रभावाच्च विनष्टराज्यं शिथिलधनं त्वां युधिष्ठिरमपि सैव राजलक्ष्मीः समागते शुभसमये पुनः समाश्रयतु । शत्रुन् दुर्योधनादिकौरवान् विनाश्य त्वं पुनः स्वराज्यं धनं प्रतापं यशः कान्ति च लभस्वेति रूपेण सा द्रौपदी कामयते। तथा शत्रुनाशार्थं तं प्रेरयति ॥४६॥

हिन्दीव्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में प्रताप के क्षय से दुःखी मन वाले राज्यच्युत युधिष्ठिर को आश्वासन देकर उनकी समृद्धि तथा अभ्युदयहेतु द्रौपदी मंगल कामना करती है ।

विधाता तथा समय के नियम के अनुसार अत्यन्त गम्भीर विपत्ति स्वरूप पश्चिमी महासागर में सन्ध्यासमय गिरे हुए प्रकाश के विनाश से मलिन कान्ति वाले संकुचित हुई किरणों वाले शत्रु सदृश अन्धकार को दूर करके दूसरे दिन-प्रातःकाल उदय को प्राप्त करते हुए सूर्य की तरह भाग्य तथा कालक्रम के अनतिक्रमणीय होने से अपरिमित दुःख के समुद्र में पड़े हुए अर्थात् अति दीनहीन दशा का अनुभव करते हुए प्रताप के विनाश से अप्रसन्न, दुःखी विनष्ट हुए धन वाले अन्धकार के सदृश भीषण शत्रु समूह को नष्ट करके शुभ समय के आ जाने पर अभ्युदय को प्राप्त करते हुए आप युधिष्ठिर को राजलक्ष्मी पुनः प्राप्त करे ।

भावार्थ—सायंकाल सूर्य पश्चिमी समुद्र में डूबता है तथा प्रातःकाल पूर्वी समुद्र से ऊपर निकलता है—ऐसी कवि प्रसिद्धि है। तथा प्रदोष काल में संकुचित हुई किरणों वाला सूर्य पश्चिमी समुद्र मे डूबता हुआ दिखलाई पड़ता है

और पुनः रात्रि के व्यतीत हो जाने पर प्रभात बेला में अन्धकार को विदीर्ण कर पूर्व की दिशा में उदित होता है। इस प्रकार के उस दिनकर का जैसे दिवस की लक्ष्मी आश्रय ग्रहण करती है, उसको अलंकृत करती है। उसी प्रकार भाग्य के प्रतिकूल होने से तथा कालचक्र के प्रभाव से नष्ट हुए राज्य वाले निर्धन आप युधिष्ठिर का भी वही राजलक्ष्मी शुभ समय के आ जाने पर पुनः आश्रय ग्रहण करे। शत्रु दुर्योधनादि कौरवों का विनाश करके आप पुनः अपने राज्य, समृद्धि, प्रताप, यश, तेज इत्यादि को प्राप्त करें—इस रूप से वह द्रौपदी मंगल कामना करती है तथा शत्रुओं के विनाश के लिए युधिष्ठिर को प्रेरित करती है ॥४६॥

टिप्पणी :

विदधाति इति विधिः।

विधिसमयनियोगात् = विधिश्च समयश्च इति विधिसमयौ। द्वन्द्व।

तयोः नियोगः; विधिसमयनियोगः; तस्मात्। षष्ठी तत्पुरुष। हेतौ पञ्चमी।

विधिः = वि + √धा + कि।

समयः = सम् + √इ + अच्।

नियोगः = नि + √युज् + घञ्।

दीप्तिसंहारजिह्मम् = दीप्तेः संहारः इति दीप्तिसंहारः। षष्ठी तत्पुरुष।

तेन जिह्मः इति दीप्तिसंहारजिह्मः; तम्। तृतीया तत्पुरुष।

दीप्तिः = √दीप् + क्तिन्।

सहारः = सम् + √हृ + घञ् भावे।

जिह्म = जहाति सन्मार्गं हीयते वा। √हा + मन्। 'सन्वद्दालोपश्च' उणादि।

'ओहाक् त्यागे'।

शिथिलवसुम् = (उपमानपक्षे) शिथिलः वसवः (रश्मयः) यस्य, सः, तम्।

(उपमेयपक्षे) शिथिलं वसु (धनं) यस्य सः, तम्। बहुब्रीहि समास।

शिथिलः = √श्लथ् + किलच्। पृषोदरादित्वात्।

अगाधे = न गाधः इति अगाधः, तस्मिन्। नञ् तत्पुरुष।

गाध = √गाध् + अच्।

आपत्पयोधो = आपत् पयोधिः इव इति, तस्मिन् । उपमित कर्मधारय ।

आपत् = आ + √पद् + क्विप् ।

पयोधिः = पयांसि धीयन्ते अस्मिन् इति ।

पयस् + √धा + कि ।

पयस् = पीयते यत् तत् । √पा + असुन् ।

रिपुतिमिरम् = रिपुः तिमिरम् इव इति, तत् । उपमित कर्मधारय ।

रिपुः = अनिष्टं रपति √रप् + कु । तिमिरम् = √तिम् + किरच् ।

दिनादौ = दिनस्य आदिः इति दिनादिः, तस्मिन् । षष्ठी तत्पुरुष ।

दिनकृतम् = दिनं करोति इति दिनकृत्, तम् । उपपद तत्पुरुष ।

दिन + √कृ + क्विप् ।

मग्नम् = म √स्ज् + क्त ।

उदस्य = उत् + √अस् + क्त्वा—ल्यप् ।

उदीयमानम् = उत् + √ई + लट् शानच् (कर्तरि) । तम् ।

समभ्येतु = सम् + अभि + √इ + आज्ञालोट्, प्रथमपुरुष एकवचन ।

कोषः

विधिः = विधिर्विधाने दैवे च—इत्यमरः ।

दीप्तिः = स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः—इत्यमरः ।

वसु = वसुर्देवेऽग्नौ रश्मौ च । वसु तोये धने मणौ—इति वैजयन्ती ।

अगाधम् = अगाधमतलस्पर्शे—इत्यमरः ।

तिमिरम् = अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः—इत्यमरः ।

भूयः = भूयस्त्रिषु बहुतरे पुनरर्थे तदव्ययम्—इत्यमरः ।

जिह्मः = जिह्मस्तु कुटिले मन्दे—इति हैमः ।

जिह्मस्तु कुटिलेऽलसे—इत्यमरः ।

रिपुः = रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः—इत्यमरः ।

लक्ष्मीः = लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया—इत्यमरः ।

अलंकारः—पूर्णोपमा अलंकार ।

उपमेय—त्वां (युधिष्ठिर), उपमान—दिनकृत्, उपमा वाचक शब्द—इव, साधारण धर्म—जिह्मत्व, शिथिलवसुत्व, मग्नत्व, शत्रुविनाशन, पुनः अभ्युदय इत्यादि समस्त अङ्गों से अलंकृत होने से पूर्णोपमा।

श्लिष्ट पदों का प्रयोग होने से श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा।

विशेषः—

माङ्गलिक 'लक्ष्मी' शब्द से सर्ग की समाप्ति।

'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति'

—व्याकरणमहाभाष्य १।१।३

छन्दः—

मालिनी।

सर्ग के अन्त में छन्दपरिवर्तन।

'ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'

	नगण	नगण	मगण	यगण	यगण	
प्रत्येक चरण में =	।।।	।।।	SSS	।SS	।SS	= १५

८, ७ पर यति

विधिस	मयनि	योगाद्दी	प्तिसंहा	रजिह्मम्
।।।	।।।	SSS	।SS	।SS

इति प्रथमः सर्गः